

## Chapter तीन

### गजेन्द्र की समर्पण-स्तुति

इस अध्याय में गजेन्द्र की स्तुतियों का वर्णन हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि गजेन्द्र पूर्वजन्म में इन्द्रद्युम्न नामक मनुष्य था जिसने परमेश्वर की एक स्तुति सीखी हुई थी। सौभाग्यवश उसे वह स्तुति स्मरण हो आई और वह मन ही मन उसका जप करने लगा। सर्वप्रथम उसने भगवान् को नमस्कार किया। किन्तु घड़ियाल द्वारा आक्रमण के फलस्वरूप अपनी विषम स्थिति के कारण ठीक से स्तुति न कर सकने के लिए उसने अपनी असमर्थता व्यक्त की। फिर भी उसने मंत्र का जप करने का प्रयास किया और निम्नलिखित उचित शब्दों में अपनी बात कह सुनाई।

भगवान् समस्त कारणों के कारण हैं। वे आदि पुरुष हैं जिनसे प्रत्येक वस्तु पैदा हुई है। वे इस विराट जगत के मूल कारण हैं और सारा विश्व उन्हीं पर टिका है; तो भी वे दिव्य हैं क्योंकि वे सभी इस जगत में अपनी बहिरंगा शक्ति से ही कार्य करते हैं। वे अध्यात्मजगत—वैकुण्ठ या गोलोक वृन्दावन—में सदैव स्थित रहते हैं जहाँ वे अपनी नित्य लीलाओं में मग्न रहते हैं। यह भौतिक जगत उनकी बहिरंगा शक्ति या भौतिक प्रकृति का प्रतिफल है, जो उनके निर्देशन में कार्य करती है। इसी कारण से सृजन, पालन तथा संहार होता रहता है। भगवान् सदा विद्यमान रहते हैं। अभक्त के लिए इसे समझ पाना दुरूह है। यद्यपि दिव्य भगवान् सबों के लिए अनुभवगम्य हैं, किन्तु केवल शुद्ध भक्त ही उनकी उपस्थिति तथा कार्यकलापों का अनुभव कर पाते हैं। वे जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि से सर्वथा मुक्त हैं। निस्सन्देह, यदि कोई इस जगत में उनकी शरण ग्रहण करता है, तो वह भी उस दिव्य पद को प्राप्त होता है। भगवान् भक्तों के सन्तोष के लिए ( *परित्राणाय साधूनाम्* ) प्रकट होते हैं और अपने कार्यकलापों का प्राकट्य करते हैं। उनका प्राकट्य, तिरोधान तथा उनकी अन्य लीलाएँ तनिक भी भौतिक नहीं होतीं। जो भी इस रहस्य को जानता है, वह भगवद्धाम में प्रवेश कर सकता है। भगवान् में सारे प्रतिकूल तत्त्वों का समंजन होता है। वे प्रत्येक हृदय में स्थित रहते हैं। वे हर वस्तु के नियामक हैं, सारे कार्यों के साक्षी हैं और समस्त जीवों के आदि स्रोत हैं। निस्सन्देह, सारे जीव उनके अंश हैं

क्योंकि वे महाविष्णु के उद्गम हैं, जो इस संसार में रहने वाले सारे जीवों के स्रोत हैं। भगवान् हमारी इन्द्रियों के कार्यों का अवलोकन कर सकते हैं क्योंकि भगवान् की कृपा से ही वे कार्य कर सकती हैं और भौतिक फल प्राप्त करती हैं। यद्यपि वे प्रत्येक वस्तु के आदि स्रोत हैं, किन्तु उनका कोई भी उपजात द्रव्य उनका स्पर्श नहीं कर पाता। इस प्रकार वे उस सोने की खान के समान हैं, जो आभूषणों के स्वर्ण का उद्गम तो है, किन्तु आभूषणों से सर्वथा भिन्न है। भगवान् की पूजा पंचरात्र में बताई विधि से की जाती है। वे हमारे ज्ञान के उद्गम हैं और हमें मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। अतएव हमारा कर्तव्य है कि हम भक्तों के उपदेशों के अनुसार, विशेषतया गुरु के उपदेश के अनुसार, उन्हें समझें। यद्यपि हमसे सतोगुण प्रच्छन्न रहता है, किन्तु सन्त पुरुषों तथा गुरु के उपदेशों का पालन करने से हम भवबन्धन से मुक्त हो सकते हैं।

“अभक्त भगवान् के आत्म-प्रकाशित भौतिक स्वरूप की आराधना करते हैं, ज्ञानी लोग उनके निर्विशेष रूप की आराधना करते हैं और योगीजन उनके अन्तर्यामी परमात्मा रूप की प्रशंसा करते हैं। किन्तु पुरुष के रूप में उनके आदि स्वरूप को केवल भक्त ही समझ पाते हैं। भगवान् बद्धजीवों के अंधकार को भगवद्गीता में दिये गये अपने उपदेशों द्वारा दूर करने में समर्थ हैं। वे दिव्य गुणों के सागर हैं और देहात्मबुद्धि से मुक्त हुए पुरुषों द्वारा ही समझे जा सकते हैं। वे अपनी अहैतुकी कृपा से बद्धजीव को भवबन्धन से छुड़ाकर भगवद्धाम वापस भेज सकते हैं और अपना निजी पार्षद बना सकते हैं। फिर भी शुद्ध भक्त भगवद्धाम वापस जाने की इच्छा नहीं रखता; वह तो इसी जगत में सेवा करके ही प्रसन्न रहता है। वह भगवान् से किसी वस्तु की याचना नहीं करता। उसकी एकमात्र प्रार्थना यही रहती है कि वह देहात्मबुद्धि से छूटकर भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगा रहे।”

इस प्रकार गजेन्द्र ने सीधे भगवान् की स्तुति की और उसे उनमें किसी देवता का भ्रम नहीं हुआ। उसे देखने कोई भी देवता नहीं आये, यहाँ तक कि ब्रह्मा या शिव भी नहीं; प्रत्युत गरुड़ पर आसीन साक्षात् भगवान् नारायण उसके समक्ष प्रकट हुए। गजेन्द्र ने अपनी सूँड़ उठाकर उनका अभिवादन किया और भगवान् ने तुरन्त ही घड़ियाल समेत जिसने उसका पाँव पकड़ रखा था उसे जल के बाहर निकाल लिया। तब भगवान् ने उस घड़ियाल को मार डाला और इस तरह गजेन्द्र की रक्षा की।

श्रीबादरायणिरुवाच

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ।

जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; व्यवसितः—स्थिर; बुद्ध्या—बुद्धि से; समाधाय—केन्द्रित करने के लिए; मनः—मन को; हृदि—हृदय में या चेतना में; जजाप—जप किया; परमम्—परम; जाप्यम्—उस मंत्र को जिसे उसने महान् भक्तों से सीखा था; प्राक्-जन्मनि—पूर्वजन्म में; अनुशिक्षितम्—अभ्यास किया हुआ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : तत्पश्चात् गजेन्द्र ने अपना मन पूर्ण बुद्धि के साथ अपने हृदय में स्थिर कर लिया और उस मंत्र का जप प्रारम्भ किया जिसे उसने इन्द्रद्युम्न के रूप में अपने पूर्वजन्म में सीखा था और जो कृष्ण की कृपा से उसे स्मरण था।

तात्पर्य : ऐसे स्मरण का वर्णन भगवद्गीता (६.४३-४४) में इस प्रकार हुआ है—

तत्र तं बुद्धि संयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।

यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव हियते ह्यवशोऽपि सः

इन श्लोकों में यह विश्वास दिलाया गया है कि यदि भक्ति में लगा हुआ व्यक्ति नीचे गिर भी जाता है, तो वह पतित नहीं होता, अपितु उसे ऐसे पद पर रखा जाता है, जिससे वह कालक्रम में भगवान् को स्मरण करेगा। जैसाकि बाद में बताया जायेगा, गजेन्द्र पहले इन्द्रद्युम्न नामक राजा था, किन्तु किन्ही कारणों से वह अगले जन्म में गजेन्द्र बना। अब गजेन्द्र संकट में था और यद्यपि उसका शरीर मनुष्य से भिन्न था, किन्तु उसे वह स्तोत्र स्मरण था जिसे वह पूर्वजन्म में जपा करता था। यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन। मनुष्य को सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ होने के लिए कृष्ण उसे फिर से अपना स्मरण कराने का अवसर प्रदान करते हैं। यहाँ यह सिद्ध हो जाता है क्योंकि यद्यपि गजेन्द्र संकट में पड़ गया था, किन्तु यह उसके लिए अवसर था कि वह अपने पूर्व भक्तिकार्यों को स्मरण करे जिससे वह तुरन्त भगवान् द्वारा उबारा जा सके।

इससे यह अनिवार्य हो जाता है कि कृष्णभावनामृत के सारे भक्त किसी मंत्र का जप करने का अभ्यास करें। निश्चय ही, मनुष्य को हरे कृष्ण मंत्र का जप करना चाहिए क्योंकि यह महामंत्र है। मनुष्य को चाहिए कि वह चिन्तामणि प्रकर सद्यसु या नृसिंह स्तोत्र ( इतो नृसिंहः परतो नृसिंहो यतो यतो यामि ततो नृसिंहः ) के जाप का अभ्यास करे। प्रत्येक भक्त को किसी न किसी मंत्र के पूर्णरूपेण

जप का अभ्यास करना चाहिए जिससे भले ही वह इस जीवन में पूर्ण आध्यात्मिक चेतना न प्राप्त कर सके, किन्तु अगले जीवन में वह पशु होने पर भी कृष्णभावनामृत को न भूल सकेगा। निस्सन्देह, भक्त को प्रयास करना चाहिए कि वह इसी जीवन में कृष्णभावनामृत को पूर्ण कर ले क्योंकि कृष्ण तथा उनके उपदेशों को समझ लेने मात्र से ही मनुष्य शरीर छोड़ने पर भगवद्धाम को वापस जा सकता है। यदि किसी का पतन भी हो तो भी कृष्णभावनामृत का अभ्यास व्यर्थ नहीं जाता। उदाहरणार्थ, अजामिल ने बचपन में अपने पिता के निर्देशन में नारायण जप का अभ्यास किया था, किन्तु बाद में अपनी युवावस्था में उसका पतन हो गया—वह शराबी, स्त्रीगामी, चोर तथा उचक्का बन गया। यद्यपि उसने अपने पुत्र नारायण को बुलाने के लिए नारायण के नाम का उच्चारण किया था फिर भी पापकर्मों में लिप्त होकर भी वह उन्नति कर गया। अतएव हमें किसी भी परिस्थिति में हरे कृष्ण मंत्र का जप करना नहीं भूलना चाहिए। इससे हमें बड़े से बड़े संकट में सहायता मिलेगी जैसाकि हम गजेन्द्र के जीवन में पाते हैं।

श्रीगजेन्द्र उवाच

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ।  
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-गजेन्द्र: उवाच—गजेन्द्र ने कहा; ॐ—हे भगवान्; नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; भगवते—भगवान् को; तस्मै—उस; यतः—जिनसे; एतत्—यह शरीर तथा भौतिक जगत; चित्-आत्मकम्—चेतना ( आत्मा ) के कारण गतिशील; पुरुषाय—परम पुरुष को; आदि-बीजाय—जो उद्गम या प्रत्येक वस्तु के मूल कारण हैं, उन्हें; पर-ईशाय—परम, दिव्य तथा पूज्य; अभिधीमहि—उनका ध्यान करता हूँ।

गजेन्द्र ने कहा : मैं परम पुरुष वासुदेव को सादर नमस्कार करता हूँ ( ॐ नमो भगवते वासुदेवाय )। उन्हीं के कारण यह शरीर आत्मा की उपस्थिति के कारण कर्म करता है; अतएव वे प्रत्येक जीव के मूल कारण हैं। वे ब्रह्मा तथा शिव जैसे महापुरुषों के लिए पूजनीय हैं और वे प्रत्येक जीव के हृदय में प्रविष्ट हैं। मैं उनका ध्यान करता हूँ।

तात्पर्य : इस श्लोक में एतच्चिदात्मकम् पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भौतिक शरीर निश्चय ही भौतिक तत्त्वों से बना हुआ है, किन्तु जब कृष्णभावनामृत का ज्ञान हो जाता है, तो यह शरीर भौतिक न रहकर आध्यात्मिक बन जाता है। भौतिक शरीर इन्द्रियभोग के लिए है, किन्तु आध्यात्मिक शरीर भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगा रहता है। अतएव जो भक्त भगवान् की सेवा में लगाकर निरन्तर

उन्हीं का चिन्तन करता रहता है उसके शरीर को कभी भी भौतिक नहीं मानना चाहिए। इसीलिए आदेश दिया गया है *गुरुषु नरमतिः*—गुरु को कभी भी भौतिक शरीरधारी सामान्य मनुष्य नहीं समझना चाहिए। *अर्च्ये विष्णौ शिलाधीः*—प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि मन्दिर का अर्चाविग्रह पत्थर का बना होता है, किन्तु यह सोचना अपराध है कि अर्चाविग्रह मात्र पत्थर है। इसी प्रकार गुरु के शरीर को भौतिक अवयवों से बना सोचना अपराध है। नास्तिक लोग सोचते हैं कि भक्तगण मूर्खतावश पत्थर की मूर्ति की पूजा ईश्वर के रूप में करते हैं और एक सामान्य पुरुष की गुरु के रूप में। किन्तु तथ्य यह है कि कृष्ण की सर्वशक्तिमानता से अर्चाविग्रह की तथाकथित पत्थर-मूर्ति प्रत्यक्ष भगवान् होती है और गुरु का शरीर प्रत्यक्ष आध्यात्मिक होता है। ऐसे शुद्ध भक्त को, जो अनन्य भक्ति में लगा रहता है, दिव्यपद पर स्थित मानना चाहिए (*स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते*)। अतएव हमें चाहिए कि भगवान् को सादर नमस्कार करें जिनकी कृपा से तथाकथित भौतिक वस्तुएँ भी आध्यात्मिक कार्य में लग जाने पर आध्यात्मिक बन जाती हैं।

ओङ्कार (प्रणव) भगवान् की प्रतीकात्मक ध्वनि-अभिव्यक्ति है। *ॐ तत्सद् इति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः*—*ॐ तत् सत्* ये तीन शब्द तुरन्त परम पुरुष का आह्वान करते हैं। अतएव कृष्ण कहते हैं कि वे सभी मंत्रों में ओङ्कार हैं (*प्रणवः सर्ववेदेषु*)। सारे वैदिक मंत्रों का उच्चारण तुरन्त भगवान् को इंगित करने के लिए ओङ्कार से प्रारम्भ होता है। उदाहरणार्थ, *श्रीमद्भागवत* का शुभारम्भ *ॐ नमो भगवते वासुदेवाय* से होता है। भगवान् वासुदेव एवं ओङ्कार (प्रणव) में कोई अन्तर नहीं है। हमें यह समझने में सतर्क रहना चाहिए कि ओङ्कार किसी निराकार का सूचक नहीं है। निस्सन्देह, इस श्लोक में तुरन्त *ॐ नमो भगवते* आया है। भगवान् एक व्यक्ति हैं। इस तरह ओङ्कार परम पुरुष का स्वरूप है। ओङ्कार का अर्थ निराकार नहीं होता जैसाकि मायावादी चिन्तक मानते हैं। *पुरुषाय* शब्द से यहाँ यह स्पष्ट रूप से व्यक्त है। ओङ्कार से सम्बोधित परम सत्य परम पुरुष है; वह निराकार नहीं है। यदि वह पुरुष न होता तो वह इस ब्रह्माण्ड का इतना बड़ा अग्रणी नियामक कैसे बनता? यद्यपि ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु इस ब्रह्माण्ड के परम नियन्ता हैं, किन्तु भगवान् विष्णु को शिव तथा ब्रह्मा भी नमस्कार करते हैं। इसीलिए इस श्लोक में *परेशाय* शब्द व्यवहृत हुआ है, जो यह सूचित करता है कि भगवान् बड़े-बड़े देवताओं द्वारा भी आराध्य हैं। *परेशाय* का अर्थ है *परमेश्वर*। ब्रह्मा तथा शिव ईश्वर या

महान् नियन्ता हैं, किन्तु भगवान् विष्णु परमेश्वर अर्थात् परम नियन्ता हैं।

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।

योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जिस मूल पद पर; इदम्—यह ब्रह्माण्ड टिका है; यतः—जिन अवयवों से; च—तथा; इदम्—यह विराट विश्व बना है; येन—जिसके द्वारा; इदम्—यह विराट विश्व रचित तथा पालित है; यः—जो; इदम्—यह भौतिक जगत है; स्वयम्—स्वयं; यः—जो; अस्मात्—इस भौतिक जगत ( फल ) से; परस्मात्—कारण से; च—तथा; परः—दिव्य या भिन्न; तम्—उस; प्रपद्ये—शरण में जाता हूँ; स्वयम्भुवम्—आत्म-निर्भर की।

भगवान् ही वह परम पद है, जिस पर प्रत्येक वस्तु टिकी हुई है; वे वह अवयव हैं जिससे प्रत्येक वस्तु उत्पन्न हुई है तथा वे वह पुरुष हैं जिसने सृष्टि की रचना की और जो इस विराट विश्व के एकमात्र कारण हैं। फिर भी वे कारण-कार्य से पृथक् हैं। मैं उन भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ जो सभी प्रकार से आत्म-निर्भर हैं।

तात्पर्य : भगवद्गीता (९.४) में भगवान् कहते हैं—*मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना*—मैं भगवान् हूँ, किन्तु सभी कुछ मेरी शक्ति पर निर्भर है, जिस प्रकार मिट्टी का पात्र मिट्टी पर निर्भर रहता है। जिस स्थान पर मिट्टी का पात्र टिका रहता है, वह भी मिट्टी है। यह मिट्टी का पात्र कुम्हार द्वारा बनाया जाता है, जिसका शरीर मिट्टी का बना होता है। कुम्हार का चाक, जिससे मिट्टी का पात्र बनता है, मिट्टी का अंश होता है और जिन अवयवों से पात्र बना रहता है वे भी मिट्टी के होते हैं। जैसी कि श्रुतिमन्त्र से पुष्टि होती है—*यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।* प्रत्येक वस्तु का मूल कारण भगवान् है और संहार होने पर प्रत्येक वस्तु उन्हीं में प्रविष्ट होती है (*प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्*) इस तरह परमेश्वर—भगवान् रामचन्द्र या भगवान् कृष्ण—हर वस्तु के मूल कारण हैं—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

“गोविन्द नाम से प्रसिद्ध कृष्ण परमनियन्ता हैं। उनका शरीर नित्य, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबों के उद्गम हैं। उनका कोई अन्य उद्गम नहीं है क्योंकि वे समस्त कारणों के मूल कारण हैं (*ब्रह्मसंहिता ५.१*)।” भगवान् हर वस्तु के कारण हैं, किन्तु उनका कोई कारण नहीं है। *सर्वं खल्विदं*

ब्रह्म । मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः । यद्यपि भगवान् सब कुछ हैं, किन्तु उनका व्यक्तित्व विराट विश्व से पृथक् है ।

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं  
क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् ।  
अविद्धदृक्साक्ष्युभयं तदीक्षते  
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

यः—जो भगवान्; स्व-आत्मनि—अपने में; इदम्—इस विराट जगत को; निज-मायया—अपनी निजी शक्ति से; अर्पितम्—लगा हुआ; क्वचित्—कभी-कभी, कल्प के प्रारम्भ में; विभातम्—प्रकट होता है; क्व च—कभी-कभी, प्रलय के समय; तत्—वह ( जगत ); तिरोहितम्—अदृश्य; अविद्ध-दृक्—वह सब कुछ देखता है ( इन सभी परिस्थितियों में ); साक्षी—गवाह; उभयम्—दोनों ( उत्पत्ति तथा प्रलय ); तत् ईक्षते—दृष्टि की हानि के बिना सब कुछ देखता है; सः—वह भगवान्; आत्म-मूलः—आत्मनिर्भर, अन्य कारण न होने पर; अवतु—कृपया हमें संरक्षण दें; माम्—मुझको; परात्-परः—दिव्य से भी दिव्य, समस्त अध्यात्म से परे ।

भगवान् अपनी शक्ति के विस्तार द्वारा कभी इस दृश्य जगत को व्यक्त बनाते हैं और कभी इसे अव्यक्त बना देते हैं । वे सभी परिस्थितियों में परम कारण तथा परम कार्य ( फल ), प्रेक्षक तथा साक्षी दोनों हैं । इस प्रकार वे सभी वस्तुओं से परे हैं । ऐसे भगवान् मेरी रक्षा करें ।

तात्पर्य : भगवान् की शक्तियाँ अनेक हैं ( परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते ) । अतएव जब भी वे चाहते हैं अपनी किसी एक शक्ति का उपयोग करते हैं और इस तरह विस्तार करके इस दृश्य जगत की सृष्टि करते हैं । पुनः जब यह दृश्य जगत विनष्ट होता है, तो यह उन्हीं में आश्रय पाता है । फिर भी वे अच्युत परम प्रेक्षक हैं । वे किसी भी परिस्थिति में परिवर्तनरहित रहते हैं । वे मात्र साक्षी के रूप में सारी सृष्टि तथा संहार से पृथक् रहते हैं ।

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो  
लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ।  
तमस्तदासीद्गहनं गभीरं  
यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

कालेन—कालान्तर में ( लाखों वर्ष बाद ); पञ्चत्वम्—जब प्रत्येक मायावी वस्तु विनष्ट हो जाती है; इतेषु—सारे विकार; कृत्स्नशः—इस दृश्य जगत के भीतर की प्रत्येक वस्तु सहित; लोकेषु—सारे लोकों में, या इनमें स्थित हर वस्तु में; पालेषु—ब्रह्मा जैसे पालनकर्ताओं में; च—भी; सर्व-हेतुषु—सारे कारणों में; तमः—महान् अंधकार; तदा—तब; आसीत्—था; गहनम्—अत्यन्त घना; गभीरम्—अत्यन्त गहरा; यः—जो भगवान्; तस्य—इस अंधकारपूर्ण स्थिति के; पारे—इसके अतिरिक्त; अभिविराजते—स्थित है या चमकता है; विभुः—परमेश्वर ।

कालक्रम से जब लोकों तथा उनके निदेशकों एवं पालकों समेत ब्रह्माण्ड के सारे कार्य-कारणों का संहार हो जाता है, तो गहन अंधकार की स्थिति आती है। किन्तु इस अंधकार के ऊपर भगवान् रहता है। मैं उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ।

तात्पर्य : वैदिक मंत्रों से हमें पता चलता है कि भगवान् सबों के ऊपर हैं। वे ब्रह्मा तथा शिव समेत समस्त देवताओं से ऊपर सर्वश्रेष्ठ हैं। वे परम नियन्ता हैं। जब उनकी शक्ति से हर वस्तु अदृश्य हो जाती है, तो विराट जगत में घना अंधकार छा जाता है। किन्तु भगवान् सूर्य-प्रकाश हैं जैसी कि वैदिक मंत्रों में पुष्टि हुई है—*आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्*। हमारा दैनिक अनुभव है कि जब हम इस धरती पर रात्रि के अंधकार में होते हैं, तो सूर्य आकाश में कहीं न कहीं सदैव चमकता रहता है। इसी प्रकार भगवान् परम सूर्य की भाँति सदैव चमकते रहते हैं, तब भी जब कालक्रम से समग्र विराट जगत विनष्ट हो जाता है।

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदु-

र्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।

यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो

दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

न—न तो; यस्य—जिसका; देवाः—देवतागण; ऋषयः—बड़े-बड़े मुनि; पदम्—पद; विदुः—समझ सकते हैं; जन्तुः—पशुओं के समान बुद्धिहीन जीव; पुनः—फिर; कः—कौन; अर्हति—समर्थ हैं; गन्तुम्—ज्ञान में प्रवेश करने में; ईरितुम्—अथवा शब्दों द्वारा व्यक्त करने में; यथा—जिस प्रकार; नटस्य—कलाकार के; आकृतिभिः—शारीरिक स्वरूप से; विचेष्टतः—विभिन्न प्रकार से नाचते हुए; दुरत्यय—अत्यन्त कठिन; अनुक्रमणः—उसकी गतियाँ; सः—वही भगवान्; मा—मुझको; आवतु—संरक्षण प्रदान करें।

आकर्षक वेशभूषा से ढके रहने तथा विभिन्न प्रकार की गतियों से नाचने के कारण रंगमंच के कलाकार को श्रोता समझ नहीं पाते। इसी प्रकार परम कलाकार के कार्यों तथा स्वरूपों को बड़े-बड़े मुनि या देवतागण भी नहीं समझ पाते और बुद्धिहीन तो तनिक भी नहीं ( जो पशुओं के तुल्य हैं )। न तो देवता तथा मुनि, न ही बुद्धिहीन मनुष्य भगवान् के स्वरूप को समझ सकते हैं और न ही वे उनकी वास्तविक स्थिति को अभिव्यक्त कर सकते हैं। ऐसे भगवान् मेरी रक्षा करें।

तात्पर्य : ऐसी ही बात कुन्ती देवी ने अभिव्यक्त की थी। भगवान् सर्वत्र भीतर-बाहर विद्यमान हैं,

यहाँ तक कि वे हृदय के भीतर भी विद्यमान रहते हैं। *सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो। ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।* इस प्रकार यह सूचित किया गया है कि भगवान् को प्रत्येक हृदय में ढूँढा जा सकता है। अनेकानेक योगी उन्हें पाने का प्रयत्न करते हैं। *ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः।* फिर भी बड़े-बड़े योगी, देवता, सन्त तथा मुनि न तो उस महान् कलाकार (नट) के स्वरूप को समझ पाये, न ही वे उनकी गतियों का अर्थ समझ पाये। तो फिर इस जगत के सामान्य चिन्तकों, यथा तथाकथित दार्शनिकों के विषय में क्या कहा जा सकता है? उनके लिए उन्हें समझ पाना असम्भव है। उनके लिए उन्हीं कथनों को स्वीकार करना चाहिए जिनका उपदेश वे हमारे बीच कृपा करके अवतरित होकर देते हैं। हमें भगवान् रामचन्द्र, भगवान् कृष्ण तथा भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के वचनों को स्वीकार मात्र करना चाहिए और उनके पदचिह्नों पर चलना चाहिए। तभी उनके अवतारों के प्रयोजन को जाना जा सकता है।

*जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवं यो वेत्ति तत्त्वतः।*

*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।*

( भगवद्गीता ४.९ )

यदि भगवत्कृपा से उन्हें कोई जान लेता है, तो उसका इसी शरीर में भी तुरन्त उद्धार हो जाएगा। तब भौतिक शरीर का कोई कार्य नहीं रह जाता। फिर शरीर जितने भी कार्य करेगा वे कृष्णभावनामृत के कार्यकलाप होंगे। इस प्रकार मनुष्य अपना शरीर त्यागकर भगवद्धाम वापस जा सकता है।

**दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं**

**विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।**

**चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने**

**भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७ ॥**

**शब्दार्थ**

दिदृक्षवः—( भगवान् को ) देखने के इच्छुक; यस्य—जिसके; पदम्—चरणकमल; सु-मङ्गलम्—कल्याणप्रद; विमुक्त-सङ्गाः—भौतिक दशाओं से पूरी तरह मुक्त; मुनयः—मुनिगण; सु-साधवः—आध्यात्मिक चेतना में बड़े-चढ़े; चरन्ति—अभ्यास करते हैं; अलोक-व्रतम्—ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ या संन्यास के व्रत; अव्रणम्—बिना किसी ऋटि के; वने—वन में; भूत-आत्म-भूताः—जो समस्त जीवों के प्रति समान भाव रखते हैं; सुहृदः—जो सबों के मित्र हैं; सः—वही भगवान्; मे—मेरा; गतिः—गन्तव्य।

जो सभी जीवों को समभाव से देखते हैं, जो सबों के मित्रवत् हैं तथा जो जंगल में ब्रह्मचर्य,

वानप्रस्थ तथा संन्यास व्रत का बिना त्रुटि के अभ्यास करते हैं, ऐसे विमुक्त तथा मुनिगण भगवान् के कल्याणप्रद चरणकमलों का दर्शन पाने के इच्छुक रहते हैं। वही भगवान् मेरे गन्तव्य हों।

तात्पर्य : इस श्लोक में भक्तों या उच्च आध्यात्मिक चेतना वाले व्यक्तियों के गुणों का वर्णन है। भक्त सबों पर समान दृष्टि रखते हैं; वे उच्च तथा निम्न जातियों में कोई अन्तर नहीं देखते। *पण्डिताः समदर्शिनः*। वे हर एक को आत्मा के रूप में देखते हैं, जो भगवान् का अंश होता है। इस प्रकार वे भगवान् की खोज करने के पात्र होते हैं। यह समझते हुए कि भगवान् हर एक के मित्र हैं ( *सुहृदं सर्वभूतानाम्* ) वे भगवान् की ओर से हर एक से मित्रवत् व्यवहार करते हैं। वे राष्ट्रों या जातियों में भेदभाव न बरतते हुए सर्वत्र कृष्णभावनामृत अर्थात् *भगवद्गीता* के आदेशों का उपदेश देते हैं। इस प्रकार वे भगवान् के चरणकमलों का दर्शन पाने के पात्र होते हैं। कृष्णभावनामृत में ऐसे उपदेशकों को *परमहंस* कहा जाता है। जैसाकि *विमुक्तसङ्ग* शब्द से सूचित होता है, उन्हें भौतिक परिस्थितियों से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता। मनुष्य को चाहिए कि भगवान् का दर्शन करने के लिए वह ऐसे भक्त की शरण में जाये।

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा

न नामरूपे गुणदोष एव वा ।

तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यः

स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।

अरूपायोरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; विद्यते—विद्यमान है; यस्य—जिसका ( भगवान् का ); च—भी; जन्म—जन्म; कर्म—कर्म; वा—अथवा; न—न तो; नाम—रूपे—कोई नाम या भौतिक स्वरूप; गुण—गुण; दोषः—त्रुटि; एव—निश्चय ही; वा—अथवा; तथापि—फिर भी; लोक—इस दृश्य जगत का; अप्यय—विनाश; सम्भवाय—तथा सृष्टि; यः—जो; स्व-मायया—अपनी निजी शक्ति से; तानि—कार्यो को; अनुकालम्—शाश्वत रीति से; ऋच्छति—स्वीकार करता है; तस्मै—उसको; नमः—नमस्कार करता हूँ; पर—दिव्य; ईशाय—परमनियन्ता को; ब्रह्मणे—परब्रह्म को; अनन्त-शक्तये—असीमित शक्ति से; अरूपाय—निराकार; ऊरू-रूपाय—अवतारों के विविध रूपों वाला; नमः—नमस्कार करता हूँ; आश्चर्य-कर्मणे—जिनके कार्य अद्भुत होते हैं।

भगवान् भौतिक जन्म, कार्य, नाम, रूप, गुण या दोष से रहित हैं। यह भौतिक जगत जिस अभिप्राय से सृजित और विनष्ट होता रहता है उसकी पूर्ति के लिए वे अपनी मूल अन्तरंगा शक्ति

द्वारा रामचन्द्र या भगवान् कृष्ण जैसे मानववत् रूप में आते हैं। उनकी शक्ति महान् है और वे विभिन्न रूपों में भौतिक कल्मष से सर्वथा मुक्त होकर अद्भुत कर्म करते हैं। अतएव वे परब्रह्म हैं। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : विष्णु पुराण में कहा गया है—*गुणांश्च दोषांश्च मुने व्यतीत समस्तकल्याण-गुणात्मको हि ।* भगवान् के न तो भौतिक रूप होता है, न भौतिक गुण या दोष। वे आध्यात्मिक हैं और समस्त आध्यात्मिक गुणों के एकमात्र आगार हैं। भगवान् ने *भगवद्गीता* (४.८) में कहा है—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।* भक्तों को बचाने तथा असुरों का संहार करने के भगवान् के कार्य दिव्य होते हैं। भगवान् जिसका संहार करते हैं उसे भगवान् द्वारा रक्षित भक्त की ही तरह फल मिलता है—दोनों का ही आध्यात्मिक उत्थान होता है। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि भक्त सीधे वैकुण्ठ जाकर भगवान् का संगी बनता है, जबकि असुर *ब्रह्मलोक* को जाता है, जो भगवान् का निर्विशेष तेज है। किन्तु दोनों का ही आध्यात्मिक उत्थान होता है। भगवान् द्वारा असुरों का वध या संहार इस भौतिक जगत के वध जैसा नहीं होता। यद्यपि वे प्रकृति के गुणों के अन्तर्गत कार्य करते प्रतीत होते हैं, किन्तु वे *निर्गुण* अर्थात् प्रकृति के गुणों से ऊपर होते हैं। उनका नाम भौतिक नहीं होता अन्यथा कोई हरे कृष्ण हरे राम का जप करके मुक्ति कैसे पा सकता है? राम तथा कृष्ण जैसे भगवान् के नाम साक्षात् राम तथा कृष्ण से अभिन्न हैं। इस तरह हरे कृष्ण मंत्र के जप से मनुष्य भगवान् राम तथा कृष्ण का निरन्तर सान्निध्य प्राप्त करता है और मुक्त हो जाता है। इसका जीवन्त उदाहरण अजामिल है, जो नारायण का नाम जपने मात्र से अपने कार्यकलापों से सदैव परे रहा। यदि अजामिल के साथ यह सही उतरता है, तो भगवान् के लिए क्या कहा जा सकता है? जब भगवान् इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं, तो वे पदार्थ से उत्पन्न नहीं होते। सम्पूर्ण *भगवद्गीता* में इसकी पुष्टि हुई है ( *जन्म कर्म च मे दिव्यम्, अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम्* )। अतएव जब हमारे लाभ के लिए दिव्य कर्म करने हेतु भगवान् राम या कृष्ण अवतरित होते हैं, तो हमें चाहिए कि हम उन्हें सामान्य मनुष्य न मानें। जब भगवान् अवतरित होते हैं, तो वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल पर ऐसा करते हैं ( *सम्भवाम्यात्ममायया* )। चूँकि वे अवतरित होने के लिए भौतिक शक्ति द्वारा बाध्य नहीं किए जाते अतएव वे सदैव दिव्य हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् को सामान्य व्यक्ति न माने। भौतिक नाम

तथा रूप तो दूषित होते हैं, किन्तु आध्यात्मिक नाम तथा रूप दिव्य होते हैं।

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ।  
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं नमस्कार करता हूँ; आत्म-प्रदीपाय—आत्म-प्रकाशित को या जीवों को प्रकाश देने वाले को; साक्षिणे—प्रत्येक के हृदय में साक्षी स्वरूप स्थित; परम-आत्मने—परमात्मा में; नमः—नमस्कार करता हूँ; गिराम्—वाणी से; विदूराय—अत्यन्त दूर, अगम्य; मनसः—मन से; चेतसाम्—या चेतना से; अपि—भी।

मैं उन आत्मप्रकाशित परमात्मा को नमस्कार करता हूँ जो प्रत्येक हृदय में साक्षी स्वरूप स्थित हैं, व्यष्टि जीवात्मा को प्रकाशित करते हैं और जिन तक मन, वाणी या चेतना के प्रयासों द्वारा नहीं पहुँचा जा सकता।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण को मानसिक, शारीरिक या बौद्धिक प्रयासों से मनुष्य द्वारा नहीं समझा जा सकता। भगवान् की कृपा से ही व्यष्टि आत्मा प्रकाशित होता है। इसीलिए भगवान् को यहाँ पर आत्मप्रदीप कहा गया है। भगवान् सूर्य के समान हैं, जो प्रत्येक वस्तु को प्रकाशित करते हैं, किन्तु किसी के द्वारा प्रकाशित नहीं होते। अतएव जो उन्हें जानने का इच्छुक हो उसे चाहिए कि उनसे प्रकाश प्राप्त करे जैसाकि *भगवद्गीता* में उपदेश दिया गया है। अपने मानसिक, शारीरिक या बौद्धिक बल से कोई भी भगवान् को नहीं समझ सकता।

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।  
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वेन—शुद्ध भक्ति से; प्रति-लभ्याय—भगवान् को, जो ऐसी भक्ति से प्राप्त किये जाते हैं; नैष्कर्म्येण—दिव्य कार्यों से; विपश्चिता—अत्यन्त विद्वान् व्यक्तियों द्वारा; नमः—नमस्कार करता हूँ; कैवल्य-नाथाय—दिव्यलोक के स्वामी को; निर्वाण—भौतिक कार्यों से पूर्ण मुक्ति; सुख—सुख का; संविदे—प्रदान करने वाला।

भगवान् की अनुभूति उन शुद्ध भक्तों को होती है, जो भक्तियोग की दिव्य स्थिति में रहकर कर्म करते हैं। वे अकलुषित सुख के दाता हैं और दिव्यलोक के स्वामी हैं। अतएव मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, भगवान् केवल भक्ति से जाने जा सकते हैं। *भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।* यदि कोई सचमुच भगवान् को जानना चाहता है, तो उसे भक्ति

के कार्यों में जुट जाना चाहिए। ये कार्य *सत्त्व* या *शुद्धसत्त्व* कहलाते हैं। भौतिक जगत में सतोगुणी कार्यों की प्रशंसा की जाती है क्योंकि ये शुद्ध ब्राह्मण के लक्षण हैं। किन्तु भक्ति के कार्य *शुद्धसत्त्व* हैं; दूसरे शब्दों में, वे दिव्य पद पर होते हैं। केवल भक्ति से ही परमेश्वर को समझा जा सकता है।

भक्ति को *नैष्कर्म्य* कहा जाता है। किन्तु मात्र भौतिक कार्यों के निषेध से काम नहीं चलता। *नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितम्*। जब तक कृष्णभावनामृत के लिए कार्य नहीं किये जाते तब तक भौतिक कार्यों को बन्द करना लाभप्रद नहीं होगा। *नैष्कर्म्य* प्राप्त करने की आशा से अनेक उच्च संन्यासियों ने अपने कार्यकलाप बन्द कर दिये; फिर भी वे असफल रहे और भौतिक व्यक्तियों की भ्रान्ति कर्म करने के लिए पुनः भौतिक पद पर लौट आये। किन्तु एक बार भक्तियोग के आध्यात्मिक कार्यों में संलग्न हो जाने पर मनुष्य नीचे नहीं गिरता। अतएव हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन हरएक को नित्य आध्यात्मिक कार्य में लगाने का एक प्रयास है, जिससे मनुष्य भौतिक कर्मों से छूट जाता है। भक्तिमार्ग के आध्यात्मिक कार्य हैं—*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्*—जिनसे भगवान् को समझा जा सकता है। अतएव, जैसाकि यहाँ पर कहा गया है—*सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता*—उन शुद्ध भक्तों को भगवान् की अनुभूति होती है, जो दिव्य *भक्तियोग* में रहकर कर्म करते हैं।

*गोपाल तापनी उपनिषद्* (१५) का कथन है—*भक्तिरस्य भजनं तदिहामुत्रोपाधिनैरास्येनैवामुष्मिन् मनसः कल्पनम् एतद् एव च नैष्कर्म्यम्*। यह *नैष्कर्म्य* की परिभाषा है। कोई मनुष्य तभी *नैष्कर्म्य* में कर्म करता है जब वह इस जीवन में या भावी जीवन में (इह अमुत्र), इसी लोक में या स्वर्गलोक में, निष्काम भाव से कृष्णभावनाभावित कार्यों में पूरी तरह लगा रहता है। *अन्याभिलाषिताशून्यम्*। जब मनुष्य सारे कल्मष से मुक्त हो जाता है और गुरु के निर्देशन में भक्ति में रहकर कर्म करता है, तो वह *नैष्कर्म्य* के पद पर होता है। भगवान् की सेवा ऐसी दिव्य भक्ति से होती है। मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ।

निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; शान्ताय—जो समस्त भौतिक गुणों से ऊपर है और पूर्णतया शान्त है उसे अथवा प्रत्येक जीव में वास करने वाले परमात्मा स्वरूप वासुदेव को; घोराय—भगवान् के भयानक रूपों को यथा जामदग्न्य तथा नृसिंह देव को; मूढाय—पशु रूप में भगवान् के स्वरूप को यथा वराह को; गुण-धर्मिणे—जो भौतिक जगत में विभिन्न गुण स्वीकार करता है;

निर्विशेषाय—भौतिक गुणों से विहीन और पूर्णतया आध्यात्मिक; साम्याय—भगवान् बुद्ध को जो निर्वाण रूप हैं, जहाँ भौतिक कार्यकलाप रुक जाते हैं; नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; ज्ञान-घनाय—ज्ञान या निर्विशेष ब्रह्म को; च—भी।

मैं सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव को, भगवान् के भयानक रूप नृसिंह देव को, भगवान् के पशुरूप ( वराह देव ) को, निर्विशेषवाद का उपदेश देने वाले भगवान् दत्तात्रेय को, भगवान् बुद्ध को तथा अन्य सारे अवतारों को नमस्कार करता हूँ। मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जो निर्गुण हैं, किन्तु भौतिक जगत में सतो, रजो तथा तमो गुणों को स्वीकार करते हैं। मैं निर्विशेष ब्रह्मतेज को भी सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : पिछले श्लोकों में बताया गया है कि भगवान् निराकार होते हुए भी अपने भक्तों का पक्ष लेने तथा असुरों को मारने के लिए असंख्य रूप धारण करते हैं। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में कहा गया है, भगवान् के इतने अवतार हैं कि वे नदी की लहरों की तरह हैं। नदी की लहरें निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं जिससे उन्हें गिन पाना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार कोई यह गणना नहीं कर सकता कि कब और कैसे देश, काल तथा पात्र की आवश्यकताओं के अनुसार भगवान् के विविध अवतार प्रकट होते हैं। भगवान् शाश्वत रूप से प्रकट होते रहते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.७) में कृष्ण ने कहा है—

*यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।*

*अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥*

“हे भरतवंशी! जब-जब धर्म का हास होता है और अधर्म का प्रमुख उत्थान होता है उस समय मैं अवतरित होता हूँ।” भौतिक जगत में कृष्णभावनामृत से विपथ होने की सदा सम्भावना रहती है अतएव कृष्ण तथा उनके भक्त ऐसी ईश्वर-विहीनता को रोकने के लिए विभिन्न रूपों में कार्य करते हैं।

निर्विशेषवादी भी, जो भगवान् के ज्ञानस्वरूप पर बल देते हैं, भगवान् के तेज में लीन होना चाहते हैं। अतएव यहाँ *ज्ञानघनाय* शब्द सूचित करता है कि भगवान् के रूप तथा अस्तित्व पर अविश्वास करने वाले नास्तिकों के लिए ही ये विभिन्न अवतार प्रकट होते हैं। चूँकि भगवान् शिक्षा देने के लिए अनेकानेक रूपों में आते हैं अतएव कोई यह नहीं कह सकता कि ईश्वर नहीं है। *ज्ञानघनाय* शब्द का प्रयोग यहाँ विशेषतया उन लोगों के लिए हुआ है जिनका ज्ञान मानसिक चिन्तन के माध्यम से भगवान् की खोज करते-करते पथरा गया है। भगवान् को जानने के लिए उथला ज्ञान व्यर्थ होता है, किन्तु जब किसी का ज्ञान गहन तथा गम्भीर हो जाता है, तो वह वासुदेव को समझता है (*वासुदेवः सर्वमिति स*

महात्मा सुदुर्लभः)। ज्ञानी इस अवस्था को अनेकानेक जन्मों के बाद प्राप्त करता है। अतएव यहाँ पर ज्ञानघनाय शब्द व्यवहृत हुआ है। शान्ताय शब्द सूचित करता है कि भगवान् वासुदेव प्रत्येक जीव के हृदय में स्थित हैं, किन्तु जीव के साथ कोई कर्म नहीं करते। निर्विशेषवादी ज्ञानी वासुदेव की अनुभूति तभी कर पाते हैं जब वे ज्ञान में पूर्णतया परिपक्व हो जाते हैं (वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः)।

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।  
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

क्षेत्र-ज्ञाय—बाह्य शरीर की प्रत्येक वस्तु जानने वाले को; नमः—मैं नमस्कार करता हूँ; तुभ्यम्—तुमको; सर्व—सब कुछ; अध्यक्षाय—अध्यक्ष को; साक्षिणे—जो साक्षी परमात्मा या अन्तर्यामी हैं; पुरुषाय—परम पुरुष को; आत्म-मूलाय—मूल स्रोत को; मूल-प्रकृतये—पुरुष-अवतार को, जो प्रकृति तथा प्रधान का उद्गम है; नमः—मैं नमस्कार करता हूँ।

मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप परमात्मा, हर एक के अध्यक्ष तथा जो कुछ भी घटित होता है उसके साक्षी हैं। आप परम पुरुष, प्रकृति तथा समग्र भौतिक शक्ति के उद्गम हैं। आप भौतिक शरीर के भी स्वामी हैं। अतएव आप परम पूर्ण हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : भगवद्गीता (१३.३) में भगवान् कहते हैं—क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत—हे भरतवंशी! तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि मैं सारे शरीरों का ज्ञाता भी हूँ। हममें से हर व्यक्ति सोचता है “मैं यह शरीर हूँ” या “यह मेरा शरीर है,” किन्तु वास्तव में सच्चाई इससे भिन्न है। हमें ये शरीर परम स्वामी द्वारा प्राप्त है। जीव, जो कि क्षेत्रज्ञ भी है, शरीर का एकमात्र स्वामी नहीं है; शरीर का वास्तविक स्वामी तो भगवान् है, जो परम क्षेत्रज्ञ है। उदाहरणार्थ, हम किराये का मकान लेकर उस मकान में रह सकते हैं, किन्तु इस मकान का असली स्वामी तो मकान मालिक होता है। इसी प्रकार हमें भी किसी एक प्रकार का शरीर मिलता है, जिससे हम इस भौतिक जगत का भोग कर सकते हैं, किन्तु इस शरीर का वास्तविक स्वामी तो भगवान् होता है। वह सर्वाध्यक्ष कहलाता है क्योंकि इस भौतिक संसार में सारी वस्तुएँ उसी की अध्यक्षता में कार्य करती हैं। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (९.१०) में की गई है जहाँ भगवान् कहते हैं—मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्—हे कुन्तीपुत्र! यह प्रकृति मेरी अध्यक्षता में कार्य करती हुई सभी चर तथा अचर प्राणियों को उत्पन्न करती है। प्रकृति से न जाने कितनी तरह के जीव प्रकट होते हैं जिनमें जलचर, पेड़-पौधे, कीट, पक्षी, पशु, मनुष्य तथा देवता

सम्मिलित हैं। प्रकृति माता है और भगवान् पिता हैं ( *अहं बीजप्रदः पिता ।* )

प्रकृति हमें भौतिक शरीर प्रदान कर सकती है, किन्तु आत्मा के रूप में हम रहते हैं भगवान् के ही अंश रूप में। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१५.७) में हुई है—*ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः । जीव ईश्वर का अंश होने के कारण इस भौतिक जगत की उपज नहीं है। अतएव इस श्लोक में भगवान् को आत्ममूल अर्थात् प्रत्येक वस्तु का मूल स्रोत कहा गया है। वे सारे जीवों के बीज रूप हैं ( बीजं मां सर्वभूतानाम् ) । भगवद्गीता* (१४.४) में भगवान् कहते हैं—

*सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।*

*तासां ब्रह्म महद् योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥*

“हे कुन्तीपुत्र! यह समझ लो कि सारी योनियों के जीव इस प्रकृति में ही जन्म लेते हैं और मैं वीर्यदाता पिता हूँ।” पौधे, वृक्ष, कीड़े, जलचर, देवता, पशु, पक्षी तथा अन्य सारे जीव भगवान् के पुत्र या अंश हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न मानसिक प्रवृत्तियों के साथ संघर्ष करने के कारण उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीर मिलते हैं ( *मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति* ) । इस प्रकार वे उस प्रकृति के पुत्र हैं जिसके वीर्यदाता भगवान् हैं। इस जगत में प्रत्येक जीव अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है और जन्म-मृत्यु के चक्र से एकमात्र मोक्ष या छुटकारे की विधि है पूर्ण आत्मसमर्पण। इसका संकेत *नमः* शब्द से मिलता है—“मैं आपको नमस्कार करता हूँ।”

*सर्वेन्द्रियगुणद्रष्टे सर्वप्रत्ययहेतवे ।*

*असता च्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥ १४ ॥*

*शब्दार्थ*

सर्व-इन्द्रिय-गुण-द्रष्टे—सभी इन्द्रिय-विषयों के द्रष्टा में; सर्व-प्रत्यय-हेतवे—सभी संशयों के समाधान ( और जिनके बिना सभी असमर्थताएँ तथा सारे संदेह हल नहीं किये जा सकते ); असता—असत्य या भ्रम के प्रकट होने से; छायाया—समानता के कारण; उक्ताय—कहलाया; सत्—सत्य का; आभासाय—प्रतिबिम्ब के लिए; ते—तुमको; नमः—नमस्कार करता हूँ।

हे भगवान्! आप समस्त इन्द्रिय-विषयों के द्रष्टा हैं। आपकी कृपा के बिना सन्देहों की समस्या के हल होने की कोई सम्भावना नहीं है। यह भौतिक जगत आपके अनुरूप छाया के समान है। निस्सन्देह, मनुष्य इस भौतिक जगत को सत्य मानता है क्योंकि इससे आपके अस्तित्व की झलक मिलती है।

तात्पर्य : इस श्लोक का भावानुवाद इस प्रकार होगा “ऐन्द्रिय कर्मों के विषय वास्तव में आपके

द्वारा देखे जाते हैं। आपके निर्देशन के बिना जीव एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। जैसी कि *भगवद्गीता* (१५.१५) में पुष्टि हुई है—*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।* आप हर एक के हृदय में स्थित हैं और आपसे ही स्मृति तथा विस्मृति आती है। *छायेव यस्य भुवनानि विभर्ति दुर्गा।* *माया* के वशीभूत जीव इस भौतिक जगत का आनन्द लूटना चाहता है, किन्तु जब तक आप आदेश नहीं देते तथा उन्हें स्मरण नहीं दिलाते तब तक वह अपने जीवन के छायाव्रत (आभासी) उद्देश्य का अनुसरण करने में प्रगति नहीं कर सकता। बद्धजीव जन्म-जन्मांतर गलत लक्ष्य की ओर प्रगति करता जाता है और उसे इस लक्ष्य का स्मरण आप द्वारा ही दिलाया जाता है। एक जन्म में बद्धजीव किसी एक लक्ष्य की ओर प्रगति करना चाहता है, किन्तु शरीर बदलने पर वह हर बात भूल जाता है। फिर भी हे प्रभु! चूँकि वह इस जगत का कुछ न कुछ भोग करना चाहता था अतएव आप उसे उसके अगले जन्म में इसका स्मरण दिलाते हैं। *मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।* चूँकि बद्धजीव आपको भूलना चाहता है अतएव आप कृपापूर्वक जन्म-जन्मांतर उसे ऐसे अवसर प्रदान करते रहते हैं जिससे वह आपको सतत् भुला सकता है। अतएव आप बद्धजीव के नित्य निर्देशक हैं। चूँकि आप हर वस्तु के मूल कारण हैं अतएव हर वस्तु सत्य प्रतीत होती है। चरम सत्य तो आप ही हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।”

*सर्वप्रत्ययहेतवे* शब्द की व्याख्या श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने की है। वे कहते हैं कि फल (कार्य) से कारण की झलक मिल जाती है। उदाहरणार्थ, मिट्टी का पात्र कुम्हार के कार्य का फल है अतएव पात्र को देखकर कुम्हार के अस्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है। इसी प्रकार यह भौतिक जगत आध्यात्मिक जगत से मिलता जुलता है और कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति अंदाजा लगा सकता है कि यह किस प्रकार कार्य कर रहा है। जैसाकि *भगवद्गीता* में बताया गया है—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सृयते सचराचरम्।* भौतिक जगत की गतिविधियों से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके पीछे भगवान् की अध्यक्षता कार्य कर रही है।

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय  
निष्कारणायद्भुतकारणाय ।  
सर्वागमाम्नायमहार्णवाय

नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं नमस्कार करता हूँ; नमः—पुनः नमस्कार करता हूँ; ते—तुम्हें; अखिल-कारणाय—हर वस्तु के परम कारण को; निष्कारणाय—कारणरहित को; अद्भुत-कारणाय—हर वस्तु के अद्भुत कारण को; सर्व—समस्त; आगम-आम्नाय—वैदिक वाङ्मय की परम्परा पद्धति के स्रोत को; महा-अर्णवाय—ज्ञान के विशाल सागर को अथवा उस विशाल समुद्र को जिसमें ज्ञान की समस्त सरिताएँ मिलती हैं; नमः—नमस्कार करता हूँ; अपवर्गाय—मोक्ष दाता को; पर-अयणाय—समस्त अध्यात्मवादियों के आश्रय को।

हे भगवान्! आप समस्त कारणों के कारण हैं, किन्तु आपका अपना कोई कारण नहीं है, अतएव आप हर वस्तु के अद्भुत कारण हैं। मैं आपको अपना सादर नमस्कार अर्पित करता हूँ। आप पञ्चरात्र तथा वेदान्तसूत्र जैसे शास्त्रों में निहित वैदिक ज्ञान के आश्रय हैं, जो आपके साक्षात् स्वरूप हैं और परम्परा पद्धति के स्रोत हैं। चूँकि मोक्ष प्रदाता आप ही हैं अतएव आप ही अध्यात्मवादियों के एकमात्र आश्रय हैं। मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् को अद्भुत कारण कहा गया है। वे इस बात में अद्भुत हैं कि उनसे असंख्य वस्तुएँ उद्भूत होने पर भी (जन्माद्यस्य यतः) वे पूर्ण बने रहते हैं (पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण एवावशिष्यते)। भौतिक जगत में हमारा अनुभव है कि यदि हमारे बैंक खाते में दस लाख डालर हों तो हम ज्यों-ज्यों धन निकालते जाते हैं त्यों-त्यों बैंक की रकम घटती जाती है और अन्त में वह शून्य हो जाती है। किन्तु भगवान् इतने पूर्ण हैं कि यदि उनके असंख्य विस्तार हो जायें तो भी वे वही भगवान् बने रहते हैं। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण एवावशिष्यते। इसीलिए वे अद्भुत कारण हैं। गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥

“गोविन्द नाम से विख्यात कृष्ण परमनियन्ता हैं। उनका शरीर शाश्वत, आनन्दमय तथा आध्यात्मिक है। वे सबों के उद्गम हैं। उनका कोई अन्य उद्गम नहीं है क्योंकि वे सभी कारणों के कारण हैं।” (ब्रह्मसंहिता ५.१)।

इस भौतिक जगत से भी हम समझ सकते हैं कि सूर्य लाखों वर्षों से अस्तित्व में है और उष्मा तथा प्रकाश देता रहा है फिर भी उसकी वही शक्ति बनी हुई है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं आता। तो फिर उस परम कारण, परब्रह्म कृष्ण के विषय में क्या कहा जाये? उनसे हर वस्तु निरन्तर उद्भूत होती

रहती है फिर भी वे मूल स्वरूप ( सच्चिदानन्द विग्रहः ) बनाये रहते हैं। कृष्ण स्वयं भगवद्गीता ( १०.८ ) में कहते हैं— मत्तः सर्वं प्रवर्तते—मुझी से हर वस्तु उद्भूत है। हर वस्तु कृष्ण से निरन्तर उद्भूत होती है, तो भी वे वही कृष्ण बने रहते हैं और बदलते नहीं हैं। अतएव वे उन समस्त आध्यात्मवादियों के आश्रय हैं, जो भवबन्धन से छूटने के इच्छुक हैं।

हरएक को कृष्ण की शरण में जाना चाहिए। इसीलिए सलाह दी गई है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥

“चाहे कोई सकाम हो, या निष्काम या फिर भगवान् के अस्तित्व में तल्लीन होना चाहता हो, वह तभी बुद्धिमान् कहा जायेगा जब वह दिव्य प्रेमाभक्ति करके भगवान् कृष्ण की पूजा करता हो।” ( भागवत २.३.१० )। कृष्ण परंब्रह्म तथा परंधाम हैं। अतएव कुछ भी चाहने वाले को—चाहे वह कर्मी हो, ज्ञानी हो या योगी हो—गम्भीरतापूर्वक भगवान् की अनुभूति करने का प्रयत्न करना चाहिए; तभी उसकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो सकेंगी। भगवान् कहते हैं— ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्— जीव जिस प्रकार से मेरी शरण में आते हैं उन्हें मैं उसी प्रकार पुरस्कृत करता हूँ। यहाँ तक कि कर्मी भी भगवान् से हर मनवांछित वस्तु प्राप्त कर सकता है। कृष्ण के लिए इच्छित वस्तु की पूर्ति करना तनिक भी कठिन नहीं है। किन्तु मुक्ति प्राप्त करने के लिए मनुष्य को वास्तव में भगवान् कृष्ण की पूजा करनी आवश्यक है।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः । मनुष्य को चाहिए कि वैदिक साहित्य का अध्ययन करके कृष्ण को समझे। जैसी कि यहाँ पुष्टि की गई है— सर्वागमाग्नाय महार्णवाय । वे समुद्र के तुल्य हैं और सारा वैदिक ज्ञान उन्हीं की ओर प्रवाहित होता है; अतएव बुद्धिमान् अध्यात्मवादी भगवान् की शरण ग्रहण करते हैं ( सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज )। यही चरम लक्ष्य है।

गुणारणिच्छन्नचिदुष्मपाय

तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ।

नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-

स्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

गुण—प्रकृति के तीन गुणों ( सत्त्व, रजस् तथा तमस् ) द्वारा; अरणि—अरणि काष्ठ द्वारा; छत्र—आवृत; चित्—ज्ञान का; उष्मपाय—उसको जिसकी अग्नि; तत्-क्षोभ—प्रकृति के तीनों गुणों के क्षोभ से; विस्फूर्जित—बाहर; मानसाय—उसको जिसका मन; नैष्कर्म्य-भावेन—आध्यात्मिक ज्ञान की अवस्था के कारण; विवर्जित—त्याग देने वालों में; आगम—वैदिक सिद्धान्त; स्वयम्—स्वयं; प्रकाशाय—जो प्रकट है उसको; नमः करोमि—मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

हे प्रभु! जिस प्रकार अरणि-काष्ठ में अग्नि ढकी रहती है उसी प्रकार आप तथा आपका असीम ज्ञान प्रकृति के भौतिक गुणों से ढका रहता है। किन्तु आपका मन प्रकृति के गुणों के कार्यकलापों पर ध्यान नहीं देता। जो लोग आध्यात्मिक ज्ञान में बढ़े-चढ़े हैं, वे वैदिक वाङ्मय में निर्देशित विधि-विधानों के अधीन नहीं होते। चूँकि ऐसे उन्नत लोग दिव्य होते हैं अतएव आप स्वयं उनके शुद्ध मनों में प्रकट होते हैं। इसलिए मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : भगवद्गीता ( १०.११ ) में कहा गया है—

तेषां एवानुकम्पार्थम् अहं अज्ञानजं तमः ।

नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

जिस भक्त ने अपने हृदय में भगवान् के चरणकमलों को धारण कर रखा है उसे भगवान् भीतर से विशेष कृपा करके ज्ञानदीप नामक दिव्य प्रकाश प्रदान करते हैं। इस ज्ञानदीप की तुलना अरणि-काष्ठ के भीतर छिपी अग्नि से की गई है। पूर्वकाल में यज्ञ सम्पन्न करने के लिए ऋषिगण सीधे अग्नि नहीं जलाते थे; अग्नि का आवाहन अरणि-काष्ठ से किया जाता था। इसी प्रकार सारे जीव प्रकृति के गुणों से आच्छन्न हैं तथा ज्ञान की अग्नि (ज्ञानदीप) भगवान् द्वारा ही जलाई जा सकती है यदि उन्हें कोई अपने हृदय में धारण करे। स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः। यदि कोई अपने हृदय के भीतर स्थित कृष्ण के चरणकमलों की शरण गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करता है, तो भगवान् सारे अज्ञान का उच्छेदन कर देते हैं। ज्ञान के दीप से मनुष्य विशेष भगवत्कृपा के कारण तुरन्त ही सब कुछ उचित रूप से समझ लेता है और स्वरूपसिद्ध बन जाता है। दूसरे शब्दों में, बाह्य रूप से सुशिक्षित न होने पर भी भक्त को भक्ति के कारण भगवान् भीतर से प्रकाश देते हैं। यदि भगवान् भीतर से प्रकाश दें तो भला कोई अज्ञान में कैसे रह सकता है? अतएव मायावादियों का यह दोषारोपण कि भक्ति का मार्ग बुद्धिहीन या अशिक्षित के लिए है सत्य नहीं उतरता।

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना

सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः

( भागवत ५.१८.१२ )

यदि कोई भगवान् का अनन्य भक्त बन जाता है, तो उसमें सारे सद्गुण स्वतः आ जाते हैं। ऐसा भक्त वेदों के उपदेशों से ऊपर होता है। वह परमहंस होता है। वैदिक वाङ्मय का अवगाहन किये बिना भी भक्त भगवत्कृपा से शुद्ध तथा प्रबुद्ध हो जाता है। भक्त कहता है “अतएव हे प्रभु! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।”

माह्वप्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय

मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ।

स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-

प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

माह्व—मेरे समान; प्रपन्न—शरणागत; पशु—पशु; पाश—बन्धन से; विमोक्षणाय—छुड़ाने वाले को; मुक्ताय—प्रकृति के कल्मष से अछूते परमेश्वर को; भूरि—करुणाय—असीम दयालु को; नमः—नमस्कार करता हूँ; अलयाय—कभी भी असावधान या अकर्मण्य न रहने वाले को ( मेरे उद्धार के लिए ); स्व-अंशेन—आपके परमात्मा रूप अंश से; सर्व—सबों का; तनु-भृत्—प्रकृति में देहधारी जीव; मनसि—मन में; प्रतीत—कृतज्ञ; प्रत्यक्-दृशे—( समस्त कार्यों के ) प्रत्यक्ष द्रष्टा के रूप में; भगवते—भगवान् को; बृहते—असीम; नमः—नमस्कार करता हूँ; ते—तुमको ।

चूँकि मुझ जैसे पशु ने परममुक्त आपकी शरण ग्रहण की है, अतएव आप निश्चय ही मुझे इस संकटमय स्थिति से उबार लेंगे। निस्सन्देह, अत्यन्त दयालु होने के कारण आप निरन्तर मेरा उद्धार करने का प्रयास करते हैं। आप अपने परमात्मा-रूप अंश से समस्त देहधारी जीवों के हृदयों में स्थित हैं। आप प्रत्यक्ष दिव्य ज्ञान के रूप में विख्यात हैं और आप असीम हैं। हे भगवान्! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने बृहते नमस्ते शब्दों की व्याख्या बृहते श्रीकृष्णाय के रूप में की है। भगवान् तो कृष्ण हैं। तत्त्व अनेक हैं यथा विष्णुतत्त्व, जीवतत्त्व तथा शक्तितत्त्व, किन्तु सबों से ऊपर विष्णुतत्त्व है, जो सर्वव्यापी है। भगवान् के इस सर्वव्यापी रूप की व्याख्या भगवद्गीता (१०.४२) में की गई है, जिसमें भगवान् कहते हैं—

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नम् एकांशेन स्थितो जगत् ॥

“किन्तु हे अर्जुन! इस विस्तृत ज्ञान की क्या आवश्यकता है? अपने एक अंश से मैं इस सम्पूर्ण

ब्रह्माण्ड में व्याप्त हूँ और इसका पालन करता हूँ।” इस प्रकार कृष्ण कहते हैं कि सारा भौतिक जगत उनके आंशिक स्वरूप, परमात्मा, द्वारा पालित है। भगवान् प्रत्येक ब्रह्माण्ड में पहले गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रवेश करते हैं और फिर क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में विस्तार करके सभी जीवों के हृदयों में, यहाँ तक कि परमाणुओं में भी, प्रवेश करते हैं। *अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थम्*। प्रत्येक ब्रह्माण्ड परमाणुओं से ओतप्रोत है और भगवान् न केवल ब्रह्माण्ड के भीतर अपितु परमाणुओं के भीतर भी विद्यमान हैं। इस प्रकार वे प्रत्येक परमाणु में विष्णु के अंश परमात्मा रूप में स्थित हैं, किन्तु जितने भी विष्णुतत्त्व हैं, वे कृष्ण से उद्भूत हैं। जैसी कि *भगवद्गीता* (१०.२) में पुष्टि की गई है—*अहम् आदिर्हि देवानाम्*—कृष्ण इस भौतिक जगत के देवों—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर—के आदि हैं। इसलिए यहाँ पर उन्हें *भगवते बृहते* कहा गया है। हर व्यक्ति भगवान् है अर्थात् ऐश्वर्य युक्त है, किन्तु कृष्ण *बृहान् भगवान्*—असीम ऐश्वर्य के स्वामी—हैं। *ईश्वरः परमः कृष्णः*। कृष्ण हर एक के उद्गम हैं। *अहं सर्वस्य प्रभवः*। यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर भी कृष्ण से उत्पन्न हैं। *मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय*—कृष्ण से श्रेष्ठ कोई व्यक्ति नहीं है। अतएव विश्वनाथ चक्रवती ठाकुर कहते हैं कि *भगवते बृहते* का अर्थ है “श्रीकृष्ण को।”

इस भौतिक जगत में प्रत्येक मनुष्य पशु है क्योंकि वह देहात्मबुद्धि से युक्त है—

*यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रि-धातुके*

*स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।*

*यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचि-*

*जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥*

“जो मनुष्य तीन तत्त्वों से बने शरीर को आत्मा मानता है, जो शरीर के उपजातों को अपने सम्बन्धी मानता है, जो अपनी जन्मभूमि को पूज्य मानता है और जो तीर्थ स्थानों में दिव्य ज्ञानवान् व्यक्तियों से भेंट करने नहीं अपितु केवल स्नान के लिए जाता है, वह गाय या गधे के समान माना जाता है।” (*भागवत* १०.८४.१३)। इस तरह प्रत्येक व्यक्ति एक तरह से पशु है और हर एक पर भौतिक संसार—रूपी घड़ियाल आक्रमण करता है। वह न केवल गजेन्द्र पर आक्रमण करता है, अपितु हममें से हर एक पर आक्रमण करता है और हम उसके दुष्परिणाम भोगते हैं।

केवल कृष्ण ही हमें इस भौतिक जगत से छुटकारा दिला सकते हैं। निस्सन्देह, वे सदैव हमारा उद्धार करने के प्रयास में लगे रहते हैं। ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। वे हमारे हृदयों के भीतर रहते हैं और तनिक भी असावधानी नहीं बरतते। उनका एकमात्र उद्देश्य भौतिक जीवन से हमारा उद्धार करना रहता है। ऐसा नहीं है कि जब हम उनकी प्रार्थना करते हैं तभी वे हमारी ओर ध्यान देते हैं। वे हमारे प्रार्थना करने के पूर्व से ही हमारा उद्धार करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। वे हमारे उद्धार के विषय में तनिक भी प्रमाद नहीं करते। अतएव इस श्लोक में कहा गया है— भूरि करुणाय नमोऽलयाय। यह भगवान् की अहैतुकी कृपा ही है कि वे हमें सदा भगवद्धाम वापस ले जाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। ईश्वर मुक्त हैं अतएव वे हमें भी मुक्त बनाना चाहते हैं और यद्यपि वे निरन्तर इसके लिए प्रयत्नशील रहते हैं, किन्तु हम उनके उपदेशों का पालन करने से इनकार करते रहते हैं (सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज)। इतने पर भी वे क्रुद्ध नहीं होते। इसीलिए उन्हें यहाँ भूरिकरुणाय कहा गया है—वे हमें इस कष्टप्रद भौतिक जीवन से उबारने तथा भगवद्धाम वापस ले जाने के लिए अत्यन्त दयालु रहते हैं।

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तै-

दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय ।

मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय

ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

आत्म—मन तथा शरीर; आत्म-ज—पुत्र तथा पुत्रियाँ; आप्त—मित्र तथा सम्बन्धी; गृह—घर, जाति, समाज तथा राष्ट्र; वित्त—धन; जनेषु—विभिन्न दास तथा सहायक तक; सक्तैः—आसक्त लोगों द्वारा; दुष्प्रापणाय—आपको, जो दुष्प्राप्य हैं; गुण-सङ्ग—तीन गुणों द्वारा; विवर्जिताय—कलुषित न होने वाले को; मुक्त-आत्मभिः—पहले से मुक्त हुए पुरुषों के द्वारा; स्व-हृदये—अपने हृदय के भीतर; परिभाविताय—ध्यान किये जाने वाले आपको; ज्ञान-आत्मने—समस्त ज्ञान के आगार; भगवते—भगवान् को; नमः—नमस्कार करता हूँ; ईश्वराय—परमनियन्ता को।

हे प्रभु! जो लोग भौतिक कल्मष से पूर्णतः मुक्त हैं, वे अपने अन्तस्थल में सदैव आपको ध्यान करते हैं। आप मुझ जैसों के लिए दुष्प्राप्य हैं, जो मनोरथ, घर, सम्बन्धियों, मित्रों, धन, नौकरों तथा सहायकों के प्रति अत्यधिक आसक्त रहते हैं। आप प्रकृति के गुणों से निष्कलुषित भगवान् हैं। आप सारे ज्ञान के आगार, परमनियन्ता हैं। अतएव मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

**तात्पर्य :** यद्यपि भगवान् इस भौतिक जगत में आते हैं, किन्तु वे प्रकृति के गुणों से अप्रभावित रहते हैं। इसकी पुष्टि ईशोपनिषद् द्वारा होती है—*अपापविद्धम्*—वे कलुषित नहीं होते। इसी तथ्य को यहाँ पर बताया गया है। *गुणसङ्ग-विवर्जिताय*। यद्यपि भगवान् इस भौतिक जगत में अवतार के रूप में प्रकट होते हैं, किन्तु वे प्रकृति के गुणों से अप्रभावित रहते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.११) में कहा गया है—*अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्*—अल्पज्ञ एवं मूर्ख लोग भगवान् का उपहास करते हैं क्योंकि वे एक मनुष्य की भाँति प्रकट होते हैं। अतएव मुक्तात्मा ही भगवान् को समझ सकते हैं। *मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय*—केवल मुक्तात्मा ही कृष्ण के विषय में निरन्तर चिन्तन कर सकता है। ऐसा व्यक्ति सबसे बड़ा योगी होता है। (*भगवद्गीता* ६.४७)

*योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।*

*श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥*

“समस्त योगियों में से जो योगी दिव्य प्रेमाभक्ति से युक्त होकर मुझ में स्थित रहता है। मेरी पूजा करता है और वह योग में मुझसे घनिष्ठतापूर्वक युक्त हो जाता है और वही सर्वश्रेष्ठ है।”

**यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा**

**भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।**

**किं चाशिषो रात्यपि देहमव्ययं**

**करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥ १९ ॥**

**शब्दार्थ**

यम्—जिस भगवान् को; धर्म-काम-अर्थ-विमुक्ति-कामा:—ऐसे व्यक्ति जो धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चार सिद्धान्तों की कामना करते हैं; भजन्तः—पूजा द्वारा; इष्टाम्—लक्ष्य को; गतिम्—गन्तव्य; आप्नुवन्ति—प्राप्त कर सकते हैं; किम्—क्या कहा जाये; च—भी; आशिषः—अन्य आशीर्वाद; राति—प्रदान करता है; अपि—भी; देहम्—शरीर को; अव्ययम्—आध्यात्मिक; करोतु—आशीष दें; मे—मुझको; अदभ्र-दयः—अत्यधिक दयालु भगवान्; विमोक्षणम्—वर्तमान संकट से तथा भौतिक जगत से मोक्ष।

भगवान् की पूजा करने पर जो लोग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चारों में रुचि रखते हैं, वे उनसे अपनी इच्छानुसार इन्हें प्राप्त कर सकते हैं। तो फिर अन्य आशीर्वादों के विषय में क्या कहा जा सकता है? कभी-कभी भगवान् ऐसे महत्वाकांक्षी पूजकों को आध्यात्मिक शरीर प्रदान करते हैं। जो भगवान् असीम कृपालु हैं, वे मुझे वर्तमान संकट से तथा भौतिकतावादी जीवन शैली से मुक्ति का आशीर्वाद दें।

**तात्पर्य :** इस भौतिक जगत में कुछ लोग *अकामी* होते हैं, कुछ *सकामी* तथा कुछ धर्म, अर्थ, काम एवं अन्ततः मोक्ष की कामना करते हैं।

*अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।*

*तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥*

( भागवत २.३.१० )

यह संस्तुति की गई है कि मनुष्य की चाहे जो भी स्थिति हो—चाहे वह भौतिक लाभ चाहता हो, या न चाहता हो, या अतंतः मोक्ष चाहता हो, उसे भगवान् की श्रद्धा-पूर्वक भक्ति करनी चाहिए। तभी उसे मनवांछित वस्तु प्राप्ति होगी। *ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*। भगवान् आदान-प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि एक सामान्य जीव भी जो चाहता है, उसे कृष्ण प्रदान करते हैं। कृष्ण हर एक के हृदय में स्थित रहते हैं और जीव को मनवांछित वस्तु देते हैं।

*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।*

*भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥*

“हे अर्जुन! भगवान् सबों के हृदय में आसीन हैं और भौतिक शक्ति से निर्मित यंत्र पर आरूढ़ सारे जीवों को घुमाते रहते हैं।” ( *भगवद्गीता १८.६१* ) भगवान् हर एक को अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति का अवसर प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि ध्रुव महाराज जैसे भक्त भी अपने पिता के साम्राज्य से अधिक बड़े साम्राज्य का वर चाहते थे। यद्यपि उन्हें आध्यात्मिक शरीर प्राप्त हुआ, किन्तु उन्हें साम्राज्य भी प्राप्त हुआ क्योंकि जो भी भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है उसे भगवान् निराश नहीं करते। चूँकि गजेन्द्र ने वर्तमान संकट से या यूँ कहें कि भौतिकतावादी जीवन के वर्तमान संकट से मुक्त होने के लिए शरण ग्रहण की थी तो भगवान् उसकी इच्छापूर्ति क्यों न करते ?

**एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं**

**वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।**

**अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं**

**गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥ २० ॥**

**तमक्षरं ब्रह्म परं परेश-**

**मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ।**

अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूर-

मनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

एकान्तिनः—अनन्य भक्त ( जिन्हें कृष्णचेतना के अतिरिक्त अन्य कोई चाह नहीं रहती ); यस्य—जिस भगवान् का; न—नहीं; कञ्चन—कुछ; अर्थम्—आशीष; वाञ्छन्ति—इच्छा करते हैं; ये—जो भक्त; वै—निस्सन्देह; भगवत्-प्रपन्नाः—भगवान् के चरणकमलों में पूरी तरह शरणागत; अति-अद्भुतम्—जो अद्भुत हैं; तत्-चरितम्—भगवान् के कार्यकलाप; सु-मङ्गलम्—तथा जो सुनने में अत्यन्त शुभ हैं; गायन्तः—कीर्तन तथा श्रवण द्वारा; आनन्द—दिव्य आनन्द रूपी; समुद्र—समुद्र में; मग्नाः—डूबे हुए; तम्—उनको; अक्षरम्—अक्षर; ब्रह्म—ब्रह्म; परम्—दिव्य; पर-ईशम्—परम पुरुषों के स्वामी को; अव्यक्तम्—अदृश्य अथवा मन तथा इन्द्रियों से अनुभव न किए जा सकने वाले; आध्यात्मिक—दिव्य; योग—भक्तियोग द्वारा; गम्यम्—प्राप्य ( भक्त्या मामभिजानाति ); अति-इन्द्रियम्—भौतिक इन्द्रियों की अनुभूति से परे; सूक्ष्मम्—सूक्ष्म; इव—सदृश; अति-दूरम्—अत्यन्त दूर; अनन्तम्—असीम; आद्यम्—आदि कारण को; परिपूर्णम्—सर्वतः पूर्ण; ईडे—मैं नमस्कार करता हूँ।

ऐसे अनन्य भक्त जिन्हें भगवान् की सेवा करने के अतिरिक्त अन्य कोई चाह नहीं रहती, वे पूर्णतः शरणागत होकर उनकी पूजा करते हैं और उनके आश्चर्यजनक तथा शुभ कार्यकलापों के विषय में सदैव सुनते तथा कीर्तन करते हैं। इस प्रकार वे सदैव दिव्य आनन्द के सागर में मग्न रहते हैं। ऐसे भक्त भगवान् से कोई वरदान नहीं माँगते, किन्तु मैं तो संकट में हूँ। अतएव मैं उन भगवान् की स्तुति करता हूँ जो शाश्वत रूप में विद्यमान हैं, जो अदृश्य हैं, जो ब्रह्मा जैसे महापुरुषों के भी स्वामी हैं और जो केवल दिव्य भक्तियोग द्वारा ही प्राप्य हैं। अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण वे मेरी इन्द्रियों की पहुँच से तथा समस्त बाह्य अनुभूति से परे हैं। वे असीम हैं, वे आदि कारण हैं और सभी तरह से पूर्ण हैं। मैं उनको नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य :

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

( भक्ति रसामृतसिंधु १.१.११ )

“मनुष्य को चाहिए कि भगवान् कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति, अनुकूल होकर तथा सकाम कर्म या दार्शनिक चिन्तन द्वारा किसी भौतिक लाभ की इच्छा के बिना करे। यह शुद्ध भक्ति कहलाती है।” अनन्य भक्तों को भगवान् से कुछ भी नहीं माँगना होता, किन्तु गजेन्द्र परिस्थितिवश अविलम्ब वर माँग रहा था क्योंकि उसके समक्ष बचाव का कोई अन्य उपाय नहीं था। कभी-कभी जब कोई विकल्प नहीं रहता तो शुद्ध भक्त भगवान् की कृपा पर पूर्णरूपेण आश्रित रहने के कारण किसी न किसी वर के लिए प्रार्थना करता है। किन्तु ऐसी प्रार्थना में खेद भी व्यक्त किया जाता है। जो भगवान् की दिव्य लीलाओं

के विषय में सदैव श्रवण तथा कीर्तन करता रहता है, वह सदैव ऐसे दिव्य पद पर स्थित रहता है जहाँ किसी भी भौतिक लाभ की याचना नहीं करनी पड़ती। जब तक कोई नितान्त शुद्ध भक्त नहीं होता तब तक वह *सङ्कीर्तन* आन्दोलन में कीर्तन करने तथा नाचने से मिलने वाले दिव्य आनन्द का भोग नहीं कर सकता। ऐसा आनन्द सामान्य भक्त को मिलना सम्भव नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने हमें दिखलाया है कि किस तरह भावविभोर होकर कीर्तन, श्रवण तथा नृत्य मात्र के द्वारा दिव्य आनन्द उठाया जा सकता है। यही भक्तियोग है। अतएव गजेन्द्र ने कहा—*आध्यात्मिक योगगम्यम्*—जिससे सूचित होता है कि जब तक कोई इस दिव्य पद पर स्थित न हो, तब तक वह भगवान् तक नहीं पहुँच सकता। भगवान् पास पहुँच सकने का वर अनेकानेक जन्मों के बाद प्राप्त होता है फिर भी श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह वर सबों को प्रदान किया है—उन पतितात्माओं तक को जिनके पास आध्यात्मिक जीवन की कोई भी विरासत नहीं है। वास्तव में कृष्णभावनामृत आन्दोलन में ऐसा ही देखा जाता है। अतएव भक्तियोग का मार्ग वह निर्मल विधि है, जिससे भगवान् तक पहुँचा जा सकता है। *भक्त्याहमेकया ग्राह्यः*—केवल भक्ति के माध्यम से भगवान् तक पहुँचा जा सकता है। भगवान् *भगवद्गीता* (७.१) में कहते हैं—

*मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन् मदाश्रयः ।*

*असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥*

“हे पृथापुत्र (अर्जुन)! अब सुनो कि किस तरह मेरी भावना से पूर्णतया भावित होकर योगाभ्यास करने और मन को मुझमें अनुरक्त करने से तुम मुझे पूरी तरह संशयरहित होकर जान सकते हो।” मात्र कृष्णभावनामृत में अनुरक्त होने तथा निरन्तर कृष्ण के चरणकमलों के चिन्तन से मनुष्य भगवान् को संशयरहित पूरी तरह जान सकता है।

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ।

नामरूपविभेदेन फलव्या च कलया कृताः ॥ २२ ॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो

निर्यान्ति संयान्त्यसकृत्स्वरोचिषः ।

तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो

बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥ २२ ॥

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्

न स्त्री न षण्डो न पुमान् जन्तुः ।  
 नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्  
 निषेधशेषो जयतादशेषः ॥ २२ ॥

### शब्दार्थ

यस्य— भगवान् का; ब्रह्म-आदयः— ब्रह्मा इत्यादि देवता; देवाः— तथा अन्य देवता; वेदाः— वैदिक ज्ञान; लोकाः— विभिन्न पुरुष; चर-अचराः— जड़ ( यथा वृक्ष ) तथा चेतन; नाम-रूप— विभिन्न नामों तथा विभिन्न रूपों के; विभेदेन— ऐसे विभागों द्वारा; फलव्या— कम महत्त्वपूर्ण; च— भी; कलया— अंशों से; कृताः— उत्पन्न; यथा— जिस तरह; अर्चिषः— स्फुलिंग; अग्नेः— अग्नि के; सवितुः— सूर्य से; गभस्तयः— चमकीले कण; निर्यान्ति— बाहर निकलते हैं; संयान्ति— तथा प्रवेश करते हैं; असकृत्— पुनः पुनः; स्व-रोचिषः— अंशरूप; तथा— उसी प्रकार से; यतः— भगवान् जिससे; अयम्— यह; गुण-सम्प्रवाहः— प्रकृति के विभिन्न गुणों का निरन्तर प्राकट्य; बुद्धिः मनः— बुद्धि तथा मन; खानि— इन्द्रियाँ; शरीर— शरीर की ( स्थूल तथा सूक्ष्म ); सर्गाः— विभाग; सः— वह परमात्मा; वै— निस्सन्देह; न— नहीं है; देव— देवता; असुर— असुर; मर्त्य— मनुष्य; तिर्यक्— पक्षी या पशु; न— न तो; स्त्री— स्त्री; न— न तो; षण्डः— क्लीव; न— न तो; पुमान्— मनुष्य; न— न तो; जन्तुः— जीव या पशु; न अयम्— न तो वह है; गुणः— भौतिक गुण; कर्म— सकाम कर्म; न— न तो; सत्— प्राकट्य; न— न तो; च— भी; असत्— अप्राकट्य; निषेध— नेति-नेति का भेदभाव; शेषः— वह अन्त है; जयतात्— उनकी जय हो; अशेषः— जो अनन्त है।

भगवान् अपने सूक्ष्म अंश जीव तत्त्व की सृष्टि करते हैं जिसमें ब्रह्मा, देवता तथा वैदिक ज्ञान के अंग ( साम, ऋग्, यजुर् तथा अथर्व ) से लेकर अपने-अपने नामों तथा गुणों सहित समस्त चर तथा अचर प्राणी सम्मिलित हैं। जिस प्रकार अग्नि के स्फुलिंग या सूर्य की चमकीली किरणों अपने स्रोत से निकल कर पुनः उसी में समा जाती हैं उसी प्रकार मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, स्थूल भौतिक तथा सूक्ष्म भौतिक शरीर तथा प्रकृति के गुणों के सतत रूपान्तर ( विकार )—ये सभी भगवान् से उद्भूत होकर पुनः उन्हीं में समा जाते हैं। वे न तो देव हैं न दानव, न मनुष्य न पक्षी या पशु हैं। वे न तो स्त्री या पुरुष या क्लीव हैं और न ही पशु हैं। न ही वे भौतिक गुण, सकाम कर्म, प्राकट्य या अप्राकट्य हैं। वे “नेति-नेति” का भेदभाव करने में अन्तिम शब्द हैं और वे अनन्त हैं। उन भगवान् की जय हो।

तात्पर्य : यह भगवान् की असीम शक्ति का संक्षिप्त वर्णन है। परम पुरुष अपने अंशों को प्रकट करके विभिन्न अवस्थाओं में कर्म करते हैं और ये अंश उनकी विभिन्न शक्तियों ( परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते ) के रूप में एकसाथ भिन्न-भिन्न रूप में स्थित हैं। प्रत्येक शक्ति सहज रूप से कार्यशील है ( स्वाभाविकी ज्ञान बलक्रिया च )। अतएव भगवान् अनन्त हैं। न तत् समश्चाभ्याधिकश्च दृश्यते— न तो कुछ उनके तुल्य हैं, न कोई वस्तु उनसे बढ़कर है। यद्यपि वे अनेक प्रकार से अपने को प्रकट करते हैं लेकिन उन्हें स्वयं कुछ भी नहीं करना होता ( न तस्य कार्यं करणं च विद्यते ) क्योंकि उनकी असीम शक्तियों के विस्तारों से ही सब कुछ किया जाता है।

जिजीविषे नाहमिहामुया कि-  
 मन्तर्बहिश्चावृतयेभयोऽन्या ।  
 इच्छामि कालेन न यस्य विप्लव-  
 स्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

जिजीविषे—दीर्घकाल तक रहने की इच्छा; न—नहीं; अहम्—मैं; इह—इस जीवन में; अमुया—या अगले जीवन में ( इस संकट से बच जाने पर मैं जीना नहीं चाहता ); किम्—क्या लाभ; अन्तः—भीतर से; बहिः—बाहर से; च—तथा; आवृतया—अज्ञान से आच्छादित; इभ-योऽन्या—हाथी रूप इस जन्म में; इच्छामि—मेरी इच्छा है; कालेन—काल के प्रभाव से; न—नहीं है; यस्य—जिसका; विप्लवः—संहार; तस्य—उस; आत्म-लोक-आवरणस्य—आत्म-साक्षात्कार के आवरण से; मोक्षम्—मोक्ष।

घड़ियाल के आक्रमण से मुक्त किये जाने के बाद मैं और आगे जीवित रहना नहीं चाहता।

हाथी के शरीर से क्या लाभ जो भीतर तथा बाहर से अज्ञान से आच्छादित हो? मैं तो अज्ञान के आवरण से केवल नित्य मोक्ष की कामना करता हूँ। यह आवरण काल के प्रभाव से विनष्ट नहीं होता।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में प्रत्येक जीव अज्ञान के अंधकार से आच्छादित है। इसलिए वेदों का आदेश है कि मनुष्य को गुरु के माध्यम से भगवान् तक पहुँचना चाहिए जिनका वर्णन तथा स्तुति गौतमीय तन्त्र में इस प्रकार की गई है—

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

“मैं अपने गुरु को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्होंने ज्ञान के दीपक से मेरी उन आँखों को खोल दिया है, जो अज्ञान के अंधकार से अंधी हो चुकी थीं।” भले ही मनुष्य इस जगत में जीवन-संघर्ष क्यों न करे, किन्तु उसके लिए सदैव जीवित रह पाना असम्भव है। फिर भी मनुष्य को समझना चाहिए कि यह जीवन-संघर्ष अज्ञान के कारण है, क्योंकि प्रत्येक जीव परमेश्वर का नित्य अंश है। किसी को हाथी या भारतीय या अमरीकी पुरुष के रूप में जीवित रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। मनुष्य को जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्ति प्राप्त करने की एकमात्र कामना करनी चाहिए। अज्ञान के कारण प्रकृति द्वारा प्रदत्त प्रत्येक जीवन को हम सुखी तथा आनन्ददायक मानते हैं, किन्तु इस भौतिक जगत के पतित जीवन में ब्रह्मा से लेकर एक क्षुद्र चींटी तक कोई भी वास्तव में सुखी नहीं है। हम सुखपूर्वक रहने के लिए अनेक योजनाएँ बनाते हैं, किन्तु इस भौतिक जगत में कोई सुखी नहीं हो सकता भले ही हम इस

जीवन में या उस जीवन में स्थायी आवास बनाने का कितना ही प्रयत्न क्यों न करें।

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।

विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; अहम्—मैं ( भौतिक जीवन से छुटकारा चाहने वाला ); विश्व-सृजम्—इस विश्व का सृजन करने वाले को; विश्वम्—जो स्वयं सम्पूर्ण विश्व स्वरूप है; अविश्वम्—विश्व से परे; विश्व-वेदसम्—इस विश्व के ज्ञाता को या इस विश्व के अवयव को; विश्व-आत्मानम्—विश्व की आत्मा को; अजम्—अजन्मा को; ब्रह्म—परम; प्रणतः अस्मि—नमस्कार करता हूँ; परम्—दिव्य; पदम्—आश्रय, शरण।

भौतिक जीवन से मोक्ष की कामना करता हुआ अब मैं उस परम पुरुष को सादर नमस्कार करता हूँ जो इस ब्रह्माण्ड का स्रष्टा है, जो साक्षात् विश्व का स्वरूप होते हुए भी इस विश्व से परे है। वह इस जगत में हर वस्तु का परम ज्ञाता है, ब्रह्माण्ड का परमात्मा है। वह अजन्मा है और परम पद पर स्थित भगवान् है। उसे मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : कभी-कभी जब सामान्य व्यक्ति को भक्तियोग या कृष्णभावनामृत का उपदेश दिया जाता है, तो लोग तर्क करते हैं “कहाँ हैं कृष्ण? कहाँ है ईश्वर? क्या आप हमें उनका दर्शन करा सकते हैं?” इस श्लोक में इसका उत्तर मिलता है कि यदि हम पर्याप्त बुद्धिमान् हैं, तो हमें यह जानना चाहिए कि कोई ऐसा भी है, जिसने सम्पूर्ण विश्व की रचना की है, जिसने इस विश्व के लिए अवयव प्रदान किये और स्वयं अवयव बन गया, जो नित्य है, किन्तु इस विश्व के भीतर नहीं है। केवल इसी बात पर भगवान् को सादर नमस्कार किया जा सकता है। भक्तिमय जीवन की यही शुरुआत है।

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते ।

योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

योग-रन्धित-कर्माणः—ऐसे व्यक्ति जिनके सकाम कर्मों के फल भक्तियोग द्वारा जलाये जा चुके हैं; हृदि—हृदय में; योग-विभाविते—पूर्णतः शुद्ध तथा विमल; योगिनः—दक्ष योगी; यम्—भगवान् को; प्रपश्यन्ति—प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं; योग-ईशम्—समस्त योग के स्वामी, भगवान् को; तम्—उसको; नतः अस्मि—नमस्कार करता हूँ; अहम्—मैं।

मैं उन ब्रह्म, परमात्मा, समस्त योग के स्वामी को सादर नमस्कार करता हूँ जो सिद्ध योगियों द्वारा अपने हृदयों में तब देखे जाते हैं जब उनके हृदय भक्तियोग के अभ्यास द्वारा सकाम कर्मों के फलों से पूर्णतया शुद्ध तथा मुक्त हो जाते हैं।

तात्पर्य : गजेन्द्र ने इतना ही स्वीकार किया कि कोई न कोई ऐसा होगा जिसने इस ब्रह्माण्ड की

रचना की है और इसको अवयव प्रदान किये हैं। इतना तो हर एक को, यहाँ तक कि कट्टर नास्तिक को भी मान लेना चाहिए। तो फिर अभक्त तथा सामान्य नास्तिक इसे क्यों नहीं स्वीकार करते? इसका कारण यह है कि वे अपने सकाम कर्मों के फलों से दूषित रहते हैं। मनुष्य को एक के बाद एक सम्पन्न किए गए सकाम कर्मों के फलस्वरूप हृदय में जमी हुई धूल से मुक्त होना चाहिए। उसे भक्तियोग के अभ्यास से इस धूल को धो डालना चाहिए। *योगरन्धित कर्माणः*। जब तक मनुष्य भौतिक प्रकृति के रजो तथा तमो गुणों से आच्छादित है तब तक भगवान् को जान पाने की कोई सम्भावना नहीं है। *तदा रजस्तमो भावाः कामलोभादयश्च ये*। जब मनुष्य रजो तथा तमो गुणों से मुक्त हो जाता है, तो वह काम तथा लोभ जैसे निम्नतम दुर्गुणों से मुक्त हो जाता है।

आजकल ऐसी बहुत सी योग की पाठशालाएँ हैं, जो लोगों को योग के अभ्यास से काम तथा लोभ विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। अतएव लोग तथाकथित योग अभ्यास के लिए अत्यन्त लालायित रहते हैं। किन्तु योग की वास्तविक विधि यहाँ पर वर्णित है। जैसाकि अधिकृत रूप में *श्रीमद्भागवत* (१२.१३.१) में कहा गया है— *ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः*— योगी वह है, जो भगवान् के चरणकमलों का सदैव ध्यान करता है। इसी की पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* (५.३८) में भी हुई है—

*प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन*

*सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति ।*

*यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं*

*गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥*

“मैं आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो साक्षात् श्यामसुन्दर या कृष्ण हैं, जिनके गुण अचिन्त्य एवं असंख्य हैं, जिन्हें शुद्ध भक्त अपने हृदयों में प्रेम रूपी अञ्जन लगी हुई भक्तिमयी आँखों से देखते हैं।” भक्तियोगी श्यामसुन्दर को—श्याम वर्ण वाले सुन्दर कृष्ण को—निरन्तर देखता है। चूँकि गजेन्द्र अपने को सामान्य पशु समझ रहा था अतएव उसने अपने आपको भगवान् का दर्शन पाने के लिए अयोग्य समझा। विनयवश उसने सोचा कि वह योग का अभ्यास नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, भला ऐसे लोग जो देहात्मबुद्धि के कारण पशुओं के समान हैं और जिनकी चेतना शुद्ध नहीं है योग का

अभ्यास कैसे कर सकते हैं? वर्तमान काल में जिन लोगों की इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, जिन्हें दर्शन का ज्ञान नहीं है और जो धर्म के सिद्धान्तों या विधि-विधानों का पालन नहीं करते, वे भी योगी होने का अभिनय करते हैं। योग अभ्यास में यह सबसे बड़ी विडम्बना है।

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग  
शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।  
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये  
कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार करता हूँ; नमः—पुनः नमस्कार है; तुभ्यम्—तुमको; असह्य—दुस्तर; वेग—वेग, प्रवाह; शक्ति-त्रयाय—तीन शक्तियों वाले परम पुरुष को; अखिल—ब्रह्माण्ड का; धी—बुद्धि के लिए; गुणाय—इन्द्रिय-विषयों के रूप में प्रकट होने वाले; प्रपन्न-पालाय—शरणागतों को शरण देने वाले ब्रह्म को; दुरन्त-शक्तये—दुर्जय शक्ति वाले; कत्-इन्द्रियाणाम्—उन व्यक्तियों द्वारा जो इन्द्रिय-संयम करने में अक्षम हैं; अनवाप्य—दुर्लभ; वर्त्मने—पथ पर।

हे प्रभु! आप तीन प्रकार की शक्तियों के दुस्तर वेग के नियामक हैं। आप समस्त इन्द्रियसुख के आगार हैं और शरणागत जीवों के रक्षक हैं। आप असीम शक्ति के स्वामी हैं, किन्तु जो लोग अपनी इन्द्रियों को वश में रखने में अक्षम हैं, वे आप तक नहीं पहुँच पाते। मैं आपको बारम्बार सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : आसक्ति, लोभ तथा काम—ये तीन दुस्तर वेग हैं, जो भगवान् के चरणकमलों पर मन को एकाग्र करने में बाधक होते हैं। ये वेग इसलिए कार्यशील रहते हैं क्योंकि भगवान् नहीं चाहते कि अभक्तों तथा नास्तिकों को उनका साक्षात्कार हो। किन्तु भगवान् के चरणकमलों की शरण लेने पर ये अवरोध हट जाते हैं और भगवान् का साक्षात्कार हो सकता है। अतएव भगवान् शरणागतों के रक्षक हैं। भगवान् के चरणकमलों की शरण में गये बिना कोई व्यक्ति भक्त नहीं बन सकता। तब भगवान् उसे भीतर से बुद्धि प्रदान करते हैं जिससे वह भगवद्धाम वापस जा सकता है।

नायं वेद स्वमात्मानं  
यच्छक्त्याहंधिया हतम् ।  
तं दुरत्ययमाहात्म्यं  
भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अयम्—सामान्य लोग; वेद—जानते हैं; स्वम्—अपनी; आत्मानम्—पहचान; यत्-शक्त्या—जिसके प्रभाव से; अहम्—मैं स्वतंत्र हूँ; धिया—इस बुद्धि से; हतम्—पराजित या आच्छादित; तम्—उसको; दुरत्यय—समझने में कठिन; माहात्म्यम्—जिसका यश; भगवन्तम्—भगवान् का; इतः—शरण लेकर; अस्मि अहम्—मैं हूँ।

मैं उन भगवान् को सादर नमस्कार करता हूँ जिनकी माया से ईश्वर का अंश जीव देहात्मबुद्धि के कारण अपनी असली पहचान को भूल जाता है। मैं उन भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ जिनके यश को समझ पाना कठिन है।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है प्रत्येक जीव—चाहे वह मनुष्य हो, देवता, पशु, पक्षी, मक्खी या कुछ और हो—भगवान् का अंश है। भगवान् तथा जीव पिता तथा पुत्र के समान घनिष्ठतापूर्वक जुड़े हैं। दुर्भाग्यवश, भौतिक सम्पर्क के कारण, जीव इसे भूल जाता है और अपनी ही योजना के अनुसार स्वतंत्र रूप से भौतिक जगत का भोग करना चाहता है। इस माया को पार कर पाना अत्यन्त कठिन है। माया जीव को आच्छादित कर लेती है क्योंकि जीव भगवान् को भूलना चाहता है और इस जगत का भोग करने के लिए अपनी योजना बनाना चाहता है। जब तक यह कलुष (कल्मष) बना रहता है तब तक बद्धजीव अपनी वास्तविक पहचान को समझने में असमर्थ बना रहेगा और जन्म-जन्मांतर भ्रम में पड़ा रहेगा। *अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयम् अहं ममेति (भागवत ५.५.८)*। जब तक जीव इतना प्रबुद्ध नहीं हो लेता कि वह अपनी वास्तविक स्थिति को समझ सके तब तक वह भौतिकतावादी जीवन के प्रति तथा घर, देश अथवा क्षेत्र, समाज, पुत्र, परिवार, जाति, बैंक बचत आदि के प्रति आकृष्ट रहता रहेगा। इन सबसे आच्छादित होने से वह सोचता रहेगा “मैं यह शरीर हूँ और इससे सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु मेरी है।” इस भौतिकवादी देहात्मबुद्धि से ऊपर उठ पाना अत्यन्त कठिन है, किन्तु जो भगवान् के शरणागत हो जाता है, जैसाकि गजेन्द्र ने किया, वह ब्रह्मपद को प्राप्त करके प्रबुद्ध हो जाता है—

*ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।*

*समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥*

“जो अध्यात्मपद पर स्थित है उसे तुरन्त ही परब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है और वह पूर्ण प्रसन्न हो जाता है। वह न तो पछताता है, न ही किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा करता है। वह समस्त जीवों के प्रति समान भाव रखता है। उस अवस्था में वह मेरी शुद्धभक्ति को प्राप्त करता है।” (*भगवद्गीता १८.५४*)। चूँकि भक्त पूर्णरूपेण ब्रह्मपद पर रहता है अतएव वह किसी अन्य जीव से

ईर्ष्या नहीं करता ( समः सर्वेषु भूतेषु ) ।

श्रीशुक उवाच

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं

ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः ।

नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्

तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; गजेन्द्रम्—गजेन्द्र को; उपवर्णित—जिसका वर्णन; निर्विशेषम्—किसी विशेष व्यक्ति के लिए न होकर ( किन्तु ब्रह्म के लिए यद्यपि वह यह नहीं जानता था कि ब्रह्म कौन है ); ब्रह्मा-आदयः—ब्रह्मा, शिव, इन्द्र तथा चन्द्र जैसे देवता; विविध—नाना प्रकार के; लिङ्ग-भिदा—पृथक्-पृथक् स्वरूपों से; अभिमानाः—अपने को पृथक् सत्ता मानते हुए; न—नहीं; एते—सभी; यदा—जब; उपससृपुः—पास आया; निखिल-आत्मकत्वात्—भगवान् के हरएक के परमात्मा होने से; तत्र—वहाँ; अखिल—ब्रह्माण्ड का; अमर-मयः—देवताओं से युक्त ( जो शरीर के केवल बाहरी अंग हैं ); हरिः—भगवान्, जो हर वस्तु का हरण कर सकते हैं; आविरासीत्—प्रकट हुआ ( हाथी के समक्ष )।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब गजेन्द्र किसी व्यक्ति विशेष का नाम न लेकर परम पुरुष का वर्णन कर रहा था, तो उसने ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, चन्द्र इत्यादि देवताओं का आह्वान नहीं किया। अतएव इनमें से कोई भी उसके पास नहीं आये। किन्तु चूँकि भगवान् हरि परमात्मा, पुरुषोत्तम हैं अतएव वे गजेन्द्र के समक्ष प्रकट हुए।

तात्पर्य : गजेन्द्र के वर्णन से लग रहा है कि वह किसी परम सत्ता को लक्ष्य कर रहा था, यद्यपि उसे यह कोई पता न था कि यह परम सत्ता कौन है। उसने अटकल लगाई “ऐसी कोई परम सत्ता अवश्य है, जो सबों से ऊपर है।” ऐसी स्थिति में भगवान् के विविध अंशों ने यथा ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, चन्द्र इत्यादि ने सोचा कि यह तो सहायता के लिए हमें नहीं बुला रहा, यह तो उस ब्रह्म को बुला रहा है; जो हम सबों के ऊपर हैं। जैसाकि गजेन्द्र ने वर्णन किया है, भगवान् के विविध अंश हैं जिनमें देवता, मनुष्य तथा पशु सम्मिलित हैं, जो विभिन्न रूपों से आच्छादित हैं। यद्यपि देवताओं के जिम्मे ब्रह्माण्ड के विविध भागों की देखभाल का उत्तरदायित्व है, किन्तु गजेन्द्र ने सोचा कि ये सब उसकी रक्षा कर पाने में असमर्थ हैं। हरिं विना नैव मृतिं तरन्ति—कोई भी व्यक्ति किसी को जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि के संकट से बचा नहीं सकता। केवल भगवान् ही संसार के खतरों से रक्षा कर सकते हैं। अतएव इस भयानक संसारी से मुक्त होने के लिए बुद्धिमान् व्यक्ति भगवान् के पास जाता है, किसी देवता के पास नहीं। जैसाकि भगवद्गीता (७.२०) में पुष्टि की गई है—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः*

*प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*—जो लोग अज्ञानी हैं, वे क्षणिक भौतिक लाभ के लिए विभिन्न देवताओं के पास जाते हैं, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि ये देवता जीव को भौतिक संसार के खतरों से बचा नहीं सकते। अन्य जीवों की तरह देवता भी भगवान् के दिव्य शरीर के बाह्य अंग मात्र हैं। जैसाकि वैदिक मंत्रों में कहा गया है—*स आत्मा अङ्गान्यन्या देवताः*। शरीर के भीतर आत्मा रहता है और शरीर के विभिन्न भाग यथा हाथ-पाँव बाह्य हैं। इसी प्रकार समग्र विश्व की आत्मा नारायण या भगवान् विष्णु हैं और सारे देवता, मनुष्य तथा अन्य जीव उनके शरीर के अंग हैं।

यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चूँकि वृक्ष अपनी जड़ों के बल पर जीवित रहता है और जब जड़ों को पानी दिया जाता है, तो वृक्ष के सारे अंगों को भोजन मिल जाता है उसी तरह मनुष्य को चाहिए कि वह भगवान् की वह पूजा करे जो सबों के आदि मूल हैं। यद्यपि भगवान् के पास तक पहुँचना अत्यन्त कठिन है, किन्तु वे हमारे अत्यन्त समीप रहते हैं क्योंकि उनका वास हमारे हृदयों में होता है। ज्योंही भगवान् यह समझ लेते हैं कि कोई मनुष्य पूर्णतया उनकी शरण में आकर कृपायाचना कर रहा है त्योंही वे तुरन्त कार्यवाही करते हैं। फलतः गजेन्द्र की रक्षा करने के लिए यद्यपि देवता नहीं आये किन्तु उसकी भावप्रवण स्तुति के कारण भगवान् तुरन्त ही उसके समक्ष प्रकट हुए। इसका अर्थ यह नहीं है कि देवता गजेन्द्र से अप्रसन्न थे बल्कि वास्तव में जब विष्णु की पूजा की जाती है, तो अन्य सारे देवताओं की भी पूजा हो जाती है। *यस्मिन् तुष्टे जगत् तुष्टम्*—यदि भगवान् प्रसन्न हैं, तो सभी प्रसन्न हैं।

*यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।*

*प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥*

“जिस प्रकार वृक्ष की जड़ में पानी डालने से तना, शाखाएँ तथा अन्य सभी भाग ऊर्जित हो उठते हैं, जिस प्रकार उदर में भोजन के पहुँचने से इन्द्रियाँ तथा शरीर के अंग चैतन्य हो उठते हैं उसी प्रकार भक्ति द्वारा भगवान् की पूजा करने से भगवान् के अंश रूप देवता स्वतः संतुष्ट हो जाते हैं। ( *भागवत* ४.३१.१४)। जब भगवान् की पूजा की जाती है, तो सारे देवता तुष्ट हो जाते हैं।

तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासः

स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ।  
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान-  
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको ( गजेन्द्र को ); तद्वत्—उस तरह से; आर्तम्—दुखी ( घड़ियाल के आक्रमण से ); उपलभ्य—समझकर; जगत्-निवासः—भगवान्, जो सर्वत्र विद्यमान हैं; स्तोत्रम्—स्तुति; निशम्य—सुनकर; दिविजैः—स्वर्गलोक के निवासियों के; सह—साथ; संस्तुवद्भिः—स्तुति करने वालों के द्वारा; छन्दोमयेन—उनकी इच्छित गति से; गरुडेन—गरुड़ द्वारा; समुह्यमानः—ले जाये जाकर; चक्र—चक्रधारण किये हुए; आयुधः—अन्य हथियार यथा गदा; अभ्यगमत्—आ गये; आशु—तुरन्त; यतः—जहाँ; गजेन्द्रः—गजेन्द्र स्थित था।

गजेन्द्र के प्रार्थना करने के कारण उसकी विकट स्थिति को समझने के पश्चात् सर्वत्र निवास करने वाले भगवान् हरि देवताओं समेत वहाँ प्रकट हुए। ये देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। अपने हाथों में चक्र तथा अन्य आयुध लिए और अपने वाहन गरुड़ की पीठ पर सवार होकर वे तीव्र गति से अपनी इच्छानुसार गजेन्द्र के समक्ष प्रकट हुए।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने विशेष रूप से संकेत किया है कि चूँकि गजेन्द्र अत्यधिक संकट में था और भगवान् से कृपा करने के लिए प्रार्थना कर रहा था अतएव देवता वहाँ जाने से सकुचाये यद्यपि वे रक्षा करने के लिए तुरन्त जा सकते थे। चूँकि उन्होंने सोचा कि गजेन्द्र की प्रार्थना भगवान् को लक्षित करके की गई है, अतः उन्होंने इसे अपमान समझा, किन्तु यह स्वयं में एक अपराध था। फलस्वरूप जब भगवान् वहाँ गये तो वे भी गये और उन्होंने भगवान् की स्तुति की जिससे उनका अपराध क्षमा हो सके।

सोऽन्तःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो  
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ।  
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-  
न्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह ( गजेन्द्र ); अन्तः-सरसि—जल में; उरु-बलेन—बलपूर्वक; गृहीतः—जो घड़ियाल द्वारा पकड़ा गया था; आर्तः—तथा अत्यन्त पीड़ित; दृष्ट्वा—देखकर; गरुत्मति—गरुड़ की पीठ पर; हरिम्—भगवान् को; खे—आकाश में; उपात्त-चक्रम्—अपना चक्र घुमाते; उत्क्षिप्य—उठा कर; स-अम्बुज-करम्—कमल का फूल लिए अपनी सूँड़ को; गिरम्-आह—शब्द कहे; कृच्छ्रात्—कठिनाई से; नारायण—हे भगवान्, नारायण; अखिल-गुरो—हे विश्व के स्वामी; भगवन्—हे भगवान्; नमः ते—मैं नमस्कार करता हूँ।

घड़ियाल ने गजेन्द्र को जल में बलपूर्वक पकड़ रखा था जिससे वह अत्यधिक पीड़ा का अनुभव कर रहा था, किन्तु जब उसने देखा कि नारायण अपना चक्र घुमाते हुए गरुड़ की पीठ

पर बैठ कर आकाश में आ रहे हैं, तो उसने तुरन्त ही अपनी सूँड़ में कमल का एक फूल ले लिया और अपनी वेदना के कारण अत्यन्त कठिनाई से निम्नलिखित शब्द कहे “हे भगवान्, नारायण, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी! हे परमेश्वर! मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।”

तात्पर्य : गजेन्द्र भगवान् का दर्शन पाने के लिए इतना इच्छुक था कि जब उसने भगवान् को आकाश में आते देखा तो उसने अत्यन्त पीड़ा से तथा मन्द स्वर में भगवान् को नमस्कार किया। भक्त भयावह स्थिति को भी भयानक नहीं मानता क्योंकि ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में वह अत्यन्त आनन्द से भगवान् से प्रार्थना कर सकता है। इस प्रकार भक्त संकट को एक सुअवसर मानता है। *तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः*। जब भक्त विकट संकट में होता है, तो वह इस संकट को भगवान् की महती कृपा मानता है क्योंकि यह संकट भगवान् का निष्ठापूर्वक तथा एकाग्र चित्त से चिन्तन करने का अवसर प्रदान करता है। *तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमानो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्* ( भागवत १०.१४.८)। वह भगवान् पर दोषारोपण नहीं करता कि उनके कारण भक्त ऐसी संकटपूर्ण स्थिति में फँस गया है प्रत्युत वह अपनी संकटपूर्ण स्थिति को अपने विगत दुष्कर्मों का फल मानता है और इस अवसर को भगवान् की प्रार्थना करने का सुयोग समझता है और भगवान् को धन्यवाद देता है कि उसे ऐसा अवसर मिला। जब भक्त इस प्रकार रहता है, तो उसकी मुक्ति—भगवद्धाम—पुनरागमन—सुनिश्चित रहती है। हम इसे गजेन्द्र के उदाहरण से सत्य मान सकते हैं क्योंकि उसने अत्यन्त आतुरता से भगवान् की प्रार्थना की और इस तरह उसे तुरन्त भगवद्धाम लौटने का अवसर प्राप्त हो गया।

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य

सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।

ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं

संपश्यतां हरिमूमुचदुच्छ्रियाणाम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको ( गजेन्द्र को ); वीक्ष्य—( उस अवस्था में ) देख कर; पीडितम्—पीड़ित; अजः—अजन्मा भगवान्; सहसा—अचानक; अवतीर्य—( गरुड़ से ) उतरकर; स-ग्राहम्—घड़ियाल सहित; आशु—तुरन्त; सरसः—जल से; कृपया—कृपा करके; उज्जहार—बाहर निकाल लिया; ग्राहात्—घड़ियाल से; विपाटित—अलग किया; मुखात्—मुख से; अरिणा—चक्र से; गजेन्द्रम्—गजेन्द्र को; सम्पश्यताम्—जो देख रहे थे; हरिः—भगवान्; अमूम—उसको ( गजेन्द्र को ); उचत्—बचा लिया; उच्छ्रियाणाम्—सभी देवताओं की उपस्थिति में।

तत्पश्चात् गजेन्द्र को ऐसी पीड़ित अवस्था में देखकर, अजन्मा भगवान् हरि तुरन्त अहैतुकी

कृपावश गरुड़ की पीठ से नीचे उतरे और गजेन्द्र को घड़ियाल समेत जल के बाहर खींच लाये। तब समस्त देवताओं की उपस्थिति में जो सारा दृश्य देख रहे थे, भगवान् ने अपने चक्र से घड़ियाल के मुख को उसके शरीर से पृथक् कर दिया। इस प्रकार उन्होंने गजेन्द्र को बचा लिया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत “गजेन्द्र की समर्पण-स्तुति” नामक तीसरे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।